नव भारत निर्माता

पी० डी० टंडन



ाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

नव भारत निर्माता

पी० डी० टंडन



अगस्त १९५५

इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

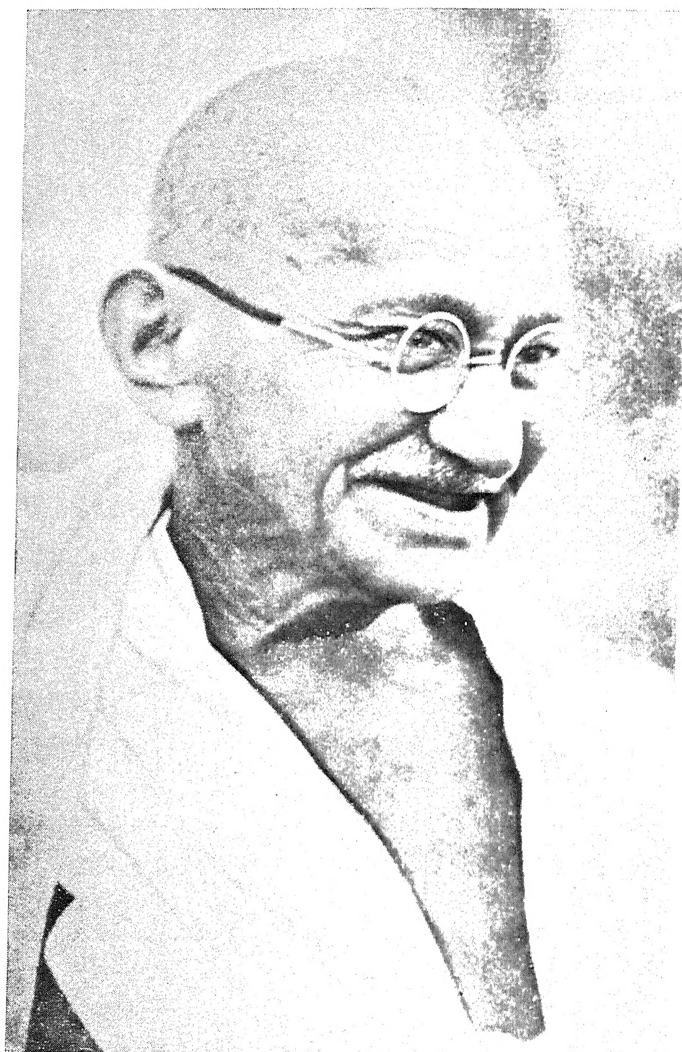
मुद्रक और प्रकाशक
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

प्रस्तावना

वीरपूजा की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है, पर गणतंत्र के इस युग में नायकों का गुणगान उन्हें देवी देवताओं के रूप में उछाल कर नहीं, वरन् ऐसे स्त्री पुरुषों के रूप में किया जाना चाहिये जो उन्हें चारित्रिक सबलता और संकल्पशक्ति की दृष्टि से जन साधारण से ऊंचा उठाते हैं। अतएव इस संग्रह में हमारे देश के कुछ प्रसिद्ध नेताओं के, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अर्ध-देवताओं के रूप में नहीं, वरन् मानवों की तरह भाग लिया है, जीवन तथा कार्यों को प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है। निकटस्थ अध्ययन के आधार पर लिखित ये शब्दचित्र उन्हें प्रेमपात्र व्यक्तित्वों के रूप में अंकित करते हैं। इनमें उनके सद्गुण तथा उनकी विचित्रतायें भी हैं जिनसे वे जनप्रिय हैं। यदि इन नेताओं के जीवन से नयी पीढ़ी को उनके आदर्शों के अनुरूप आचरण करने की प्रेरणा मिली तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।

लेखक

विषय सूची



महात्मा गांधी

महात्मा गांधी

गांधीजी ऐतिहासिक लोकनायक थे जिन्हें हम सदैव कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेंगे। वह हमारे बीच नहीं हैं पर उनका संदेश भावी पीढ़ियों को प्रभावित करता रहेगा। यह दुख की बात है कि संसार उनके सिद्धान्तों के अनुरूप आचरण करने में समर्थ नहीं हो सका। पर जब तक वह उनके सिद्धांतों का पालन नहीं करता तब तक संसार में सुख शांति संभव नहीं है।

गांधीजी का व्यक्तित्व शक्तिशाली था। वह एक मसीहा थे जो भविष्य का आभास प्राप्त कर सकते थे और वर्त्तमान को अपने सांचे में ढाल सकते थे। वह प्रेम-पात्र, सम्मान-पात्र स्वामी थे जिनका अनुगमन किया जाता था। उनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, फिर भी वह श्रेष्ठ सेना नायक, सर्वोच्च गुण सम्पन्न सेनापति और कुशल व्यूह रचयिता थे। उनकी कार्य प्रणाली शुद्ध और कार्य-विधि असाधारण थी। वह अपने प्रतिद्वंद्वियों पर फ़ौलाद के अस्त्रों से नहीं, वरन् प्रेम, विनम्रता और सदाशयता के अस्त्रों से प्रहार करते थे। चर्चिल ने एक बार कहा था—"इसे जो कभी इनर टेम्पिल (ग्रेट ब्रिटेन की एक कानून-शिक्षा-संस्था) दीक्षित वकील था और अब विद्रोही फ़क़ीर है, सम्राट के प्रतिनिधि से समता के आधार-पर समझौता-वार्त्ता चलाने के लिये वाइसराय भवन की सीढ़ियोंपर अध-नंगे चढ़ते हुए देखकर ग्लानि और लज्जा उत्पन्न होती है।" पर चर्चिल को अपने वक्तव्य की मूर्खता अनुभव करनी पड़ी। अब समस्त संसार जानता है कि परमात्मा का यह प्रिय पुत्र किसी भी मानव से समता के आधार पर बात कर सका। वह अपने युग के महा मानव थे। उनके समकालीन महापुरुषों का कोई भी स्थान और पद क्यों न रहा हो, पर वे उनके समक्ष छोटे मालूम पड़ते थे। जिन्होंने उनकी निन्दा की उन्होंने भी आखिर उनकी प्रशंसा

की। उनके व्यक्तित्व में कोई जादू था जिसके आकर्षण को रोका नहीं जा सकता था। उनके कार्यों में चेतनाप्रद मौलिकता थी। हिंसा, क्रोध और घृणा से व्याप्त संसार में मानवता के लिये वही एक मात्र आशा की किरण थे। वही एकमात्र प्रकाश थे जो आस-पास के अंधकार और निराशा को दूर कर रहे थे। वह चले गये हैं पर वह अब भी हमारे प्रहरी हैं। "एक जाज्वल्यता चली गई। हमारे जीवन को तप्त और प्रकाशित करनेवाला सूर्य अस्त हो गया और हम शीत तथा अंधकार में कांपने लगे। वह हमें ऐसा अनुभव न करने देंगे। आखिर उस ज्योति ने जिसे हमने इतने वर्षों तक देखा, उस दैवी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ने, हमें भी तो परिवर्तित कर दिया है।" हमें अपना विश्वास दृढ़ रखना चाहिये और उनके निर्देशानुसार कार्य करने का संकल्प करना चाहिये।

हमारा यह सौभाग्य है कि वह हमारे समकालीन थे। भावी पीढ़ियां कठिनाई से यह विश्वास करेंगी कि इस धरा पर ऐसे महापुरुष के पदचिह्न अंकित हुए थे। हमें इस बात का गौरव और आनन्द प्राप्त है कि हमारे देश में ऐसी महान-आत्मा का जन्म हुआ। वह अब भी हमारे बीच जीवित हैं। उनका जीवन स्वयं के लिये नहीं, वरन् ग़रीबों और पीड़ितों के लिये था। वह जीवित हैं, क्योंकि उन्होंने दूसरों के लिये आत्मोत्सर्ग किया; वह जीवित हैं, क्योंकि उनकी इच्छा जनता की मनसा के विपरीत रहने की नहीं थी। उनका जीवन-व्रत मानवता को उत्कर्ष पर पहुंचाना तथा निराश आत्माओं में प्रसन्नता की लहर उत्पन्न करना था। उन्होंने अनेक लड़ाइयां लड़ीं और विजय प्राप्त की क्योंकि उनका उद्देश्य पवित्र था। वह विजयी हुए, क्योंकि वह दूसरों के हित के लिये लड़े; वह विजयी हुए क्योंकि उनकी मनसा शत्रु को भी धूल में मिलाने की नहीं थी। उनके लिये विजय का अर्थ प्रतिद्वंद्वी का परास्त होना नहीं, वरन् अपने सिद्धांतों की सफलता थी। अपनी मृत्यु में भी उन्हें विजय-श्री प्राप्त हुई क्योंकि उन्होंने अपने सिद्धांतों के लिये देहोत्सर्ग किया। यदि अपने किसी उपवास

में उनका देहांत हो गया होता तो एक हिन्दू के हाथों उनकी हत्या होने की लज्जा से हम मुक्त रहे होते । भाग्य की यह दुखांत विडम्बना है कि महान्तम हिन्दू हिन्दुत्व के नाम पर एक हिन्दू द्वारा मारा गया । श्रीमती सरोजिनी नायडू ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा था, "हिन्दू समाज के लिये शोक की बात है कि एक मात्र हिन्दू जिसकी हिंदुत्व के आदर्शों और दर्शन के प्रति पूर्णतः निष्ठा थी, एक हिन्दू के हाथों हत्या हुई ।"

वह मानवों में महामानव थे । शक्ति के स्रोत थे । वह मसीहा की तरह बोलते थे और महान सेनापति की तरह कार्य करते थे । वह जहां बैठ जाते वह स्थान मंदिर बन जाता, वह जो कुछ लिख देते वह धर्म-संदेश बन जाता । उनसे भेंट खोज के लिये यात्रा के समान होती थी । वह कोई बात दबाते या छिपाते नहीं थे । मुझे ७ अगस्त सन् १९४२ को उनकी बातें सुनने का सुअवसर मिला । मुझे उनका वह दृढ़ और शानदार रूप स्मरण है जिसने ब्रिटिश राज को कड़ी चुनौती दी । वह मृदुलता से बोले । कदाचित् वह धीमे स्वर में बहुत ही सधे शब्द बोले । फिर भी उनकी वाणी में लोह संकल्प था जिसने समस्त देश को उत्तेजित तथा संघर्ष के लिये उत्प्रेरित कर दिया । वह बहुत देर तक बोले तथा श्रोता-गण अचल बैठे-बैठे उनके प्रत्येक शब्द को पीते रहे । उन्होंने अपनी अंगुली अपने सिरसे कुछ ऊंची उठाकर कहा—"मंच तैयार है । परदा गिरता है । समय आ गया है । करो या मरो ।" वहां सन्नाटा छा गया । श्रोताओं ने उन्हें नमन किया । पंडाल में "महात्मा गांधी की जय" की ध्वनि और प्रतिध्वनि गूंजने लगी । राष्ट्र संग्राम के लिये, क्रांति के तूफ़ानी सागर में कूदनेके लिये तैयार था ।

गांधीजी ने अपने देश को स्वतंत्र कराया और अपने जीवन व्रत को पूरा किया । यह ऐसी विजय थी जिस पर संसार का कोई भी नेता गौरव अनुभव करता । परंतु उनका केवल इतना ही जीवन व्रत नहीं था । उन्होंने भारत को एक विशाल प्रयोगशाला बनाया जिसमें उन्होंने सत्य के

की। उनके व्यक्तित्व में कोई जादू था जिसके आकर्षण को रोका नहीं जा सकता था। उनके कार्यों में चेतनाप्रद मौलिकता थी। हिंसा, क्रोध और घृणा से व्याप्त संसार में मानवता के लिये वही एक मात्र आशा की किरण थे। वही एकमात्र प्रकाश थे जो आस-पास के अंधकार और निराशा को दूर कर रहे थे। वह चले गये हैं पर वह अब भी हमारे प्रहरी हैं। "एक जाज्वल्यता चली गई। हमारे जीवन को तप्त और प्रकाशित करनेवाला सूर्य अस्त हो गया और हम शीत तथा अंधकार में कांपने लगे। वह हमें ऐसा अनुभव न करने देंगे। आखिर उस ज्योति ने जिसे हमने इतने वर्षों तक देखा, उस दैवी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ने, हमें भी तो परिवर्तित कर दिया है।" हमें अपना विश्वास दृढ़ रखना चाहिये और उनके निर्देशानुसार कार्य करने का संकल्प करना चाहिये।

हमारा यह सौभाग्य है कि वह हमारे समकालीन थे। भावी पीढ़ियां कठिनाई से यह विश्वास करेंगी कि इस धरा पर ऐसे महापुरुष के पदचिह्न अंकित हुए थे। हमें इस बात का गौरव और आनन्द प्राप्त है कि हमारे देश में ऐसी महान-आत्मा का जन्म हुआ। वह अब भी हमारे बीच जीवित हैं। उनका जीवन स्वयं के लिये नहीं, वरन् ग़रीबों और पीड़ितों के लिये था। वह जीवित हैं, क्योंकि उन्होंने दूसरों के लिये आत्मोत्सर्ग किया; वह जीवित हैं, क्योंकि उनकी इच्छा जनता की मनसा के विपरीत रहने की नहीं थी। उनका जीवन-व्रत मानवता को उत्कर्ष पर पहुंचाना तथा निराश आत्माओं में प्रसन्नता की लहर उत्पन्न करना था। उन्होंने अनेक लड़ाइयां लड़ीं और विजय प्राप्त की क्योंकि उनका उद्देश्य पवित्र था। वह विजयी हुए, क्योंकि वह दूसरों के हित के लिये लड़े; वह विजयी हुए क्योंकि उनकी मनसा शत्रु को भी धूल में मिलाने की नहीं थी। उनके लिये विजय का अर्थ प्रतिद्वंद्वी का परास्त होना नहीं, वरन् अपने सिद्धांतों की सफलता थी। अपनी मृत्यु में भी उन्हें विजय-श्री प्राप्त हुई क्योंकि उन्होंने अपने सिद्धांतों के लिये देहोत्सर्ग किया। यदि अपने किसी उपवास

में उनका देहांत हो गया होता तो एक हिन्दू के हाथों उनकी हत्या होने की लज्जा से हम मुक्त रहे होते। भाग्य की यह दुखांत विडम्बना है कि महान्तम हिन्दू हिन्दुत्व के नाम पर एक हिन्दू द्वारा मारा गया। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा था, "हिन्दू समाज के लिये शोक की बात है कि एक मात्र हिन्दू जिसकी हिंदुत्व के आदर्शों और दर्शन के प्रति पूर्णतः निष्ठा थी, एक हिन्दू के हाथों हत्या हुई।"

वह मानवों में महामानव थे। शक्ति के स्रोत थे। वह मसीहा की तरह बोलते थे और महान सेनापति की तरह कार्य करते थे। वह जहां बैठ जाते वह स्थान मंदिर बन जाता, वह जो कुछ लिख देते वह धर्म-संदेश बन जाता। उनसे भेंट खोज के लिये यात्रा के समान होती थी। वह कोई बात दबाते या छिपाते नहीं थे। मुझे ७ अगस्त सन् १९४२ को उनकी बातें सुनने का सुअवसर मिला। मुझे उनका वह दृढ़ और शान-दार रूप स्मरण है जिसने ब्रिटिश राज को कड़ी चुनौती दी। वह मृदुलता से बोले। कदाचित् वह धीमे स्वर में बहुत ही सधे शब्द बोले। फिर भी उनकी वाणी में लोह संकल्प था जिसने समस्त देश को उत्तेजित तथा संघर्ष के लिये उत्प्रेरित कर दिया। वह बहुत देर तक बोले तथा श्रोता-गण अचल बैठे-बैठे उनके प्रत्येक शब्द को पीते रहे। उन्होंने अपनी अंगुली अपने सिरसे कुछ ऊंची उठाकर कहा--"मंच तैयार है। परदा गिरता है। समय आ गया है। करो या मरो।" वहां सन्नाटा छा गया। श्रोताओं ने उन्हें नमन किया। पंडाल में "महात्मा गांधी की जय" की ध्वनि और प्रतिध्वनि गूंजने लगी। राष्ट्र संग्राम के लिये, क्रांति के तूफ़ानी सागर में कूदनेके लिये तैयार था।

गांधीजी ने अपने देश को स्वतंत्र कराया और अपने जीवन व्रत को पूरा किया। यह ऐसी विजय थी जिस पर संसार का कोई भी नेता गौरव अनुभव करता। परंतु उनका केवल इतना ही जीवन व्रत नहीं था। उन्होंने भारत को एक विशाल प्रयोगशाला बनाया जिसमें उन्होंने सत्य के

प्रयोग किये । यद्यपि वह स्वयं को यथार्थवादी मानते थे पर वह भविष्य-दर्शी और विशुद्ध आदर्शवादी थे । वह अपनी जनता में सत्य और अहिंसा की भावना विकसित नहीं कर सके । इस दृष्टि से वह असफल रहे । पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में वह भले ही उस रूप में असफल रहे हों जिस रूप में बुद्ध असफल रहे हों, ईसा अपने लोगों को अन्याय से मुक्त रखने में असफल रहे हों, पर वह सदैव ऐसी महान आत्मा के रूप में स्मरण किये जायंगे जिसने अपने जीवन को आगामी युगों के लिये अनुकरणीय बना दिया ।

कम्युनिस्टों और दूसरे वाम पक्षियों का विभिन्न समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में उनसे मतभेद था । फिर भी वे उनका सम्मान करते थे । उनका खयाल था कि गांधीजी अर्थ शास्त्र नहीं समझते थे, आधुनिक युग में आर्थिक समस्याओं का समाधान करने का उनका तरीका सफल न होगा, और वह कट्टर पंथी थे । पर वास्तविकता यह है कि वह अपने युग के सब से बड़े क्रांतिकारी थे । वह व्यावहारिक यथार्थवादी थे जिनका लक्ष्य भारतीय समस्याओं का विशेष ढंग से समाधान करना था । उन्होंने लिखा था—"मैं ऐसे भारत का निर्माण करने का यत्न करूंगा जिसमें जनता यह अनुभव करेगी कि यह स्वदेश है, जिसके निर्माण में उनका प्रभाव-शाली हाथ है, ऐसा भारत जिसमें न ऊंच और न नीच वर्ग होगा, ऐसा भारत जिसमें सभी सम्प्रदायों के लोग अच्छी तरह मिल जुलकर रहेंगे । ऐसे भारत में अछूतपन तथा मादक पदार्थों के सेवन के लिये कोई स्थान नहीं रहेगा । स्त्रियों और पुरुषों के समान ही अधिकार होंगे । यही मेरी कल्पना का भारत होगा ।"

गांधीजी की विनम्रता असाधारण कोटि की थी। वह अपने विचारों को अंतिम रूप से सही होने का दावा नहीं करते थे । वह उन्हें सत्य के प्रयोग कहते थे । वह सदैव अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार रहते और यथा समय उनका संशोधन करते । वह मानवता के शिक्षक थे पर सदैव स्वयं शिक्षित होने के लिये तत्पर रहते थे । उनका विकासशील व्यक्तित्व था ।

गांधीजी ऐसे नेता थे जिनका स्वर जनता के कोलाहल के ऊपर सुनाई पड़ता था। उनका मत विकासशील जीवन दर्शन था। यद्यपि वह गत्यात्मक और प्रभावशाली थे, पर साथ ही धैर्य के स्तम्भ भी थे और विजय प्राप्ति के लिये जल्दबाज़ी नहीं करते थे। वह अपने मंतव्य के अतिरिक्त अपने प्रतिद्वंद्वी का मंतव्य भी समझते थे। लोग उन्हें महात्मा कहते थे परंतु वह अपने को इस गौरव के अनुरूप नहीं मानते थे। वह सदैव यह कहा करते थे कि मैं भी किसी दूसरे की तरह साधारण जन हूं। लोग उनके जीवन दर्शन को गांधीवाद के नाम से पुकारते थे, पर वह कहते थे कि ऐसी कोई चीज़ नहीं है।

उन्होंने पतितों—विशेषतः अछूतोंके लिये बहुत कुछ किया। सन् १९३२ में जब ब्रिटिश सरकार हरिजनों को हिन्दू जाति से पृथक कर रही थी तब उन्होंने यरवदा जेल में आमरण अनशन किया और स्वर्गीय रैमज़े मेकडानल्ड को लिखा—"मेरी पुकार परमात्मा की गद्दी तक पहुंचेगी। मैं हिन्दू अंतरात्मा को द्रवित करने और ब्रिटिश सरकार की अंतरात्मा को जागृत करने के लिये असाधारण यत्न करूंगा।" गांधीजी अछूतों के प्रति अर्ध-मानुषिक व्यवहार को कभी सहन नहीं कर सकते थे। उनके लिये यह विचार ही असहनीय था कि हरिजन के स्पर्शमात्र से हिन्दू अपवित्रता अनुभव करे। एक बार उन्होंने लिखा, "मैं जन्मजात अछूत नहीं हूं, परंतु स्वेच्छा से गत पचास वर्षों से अछूत हूं।" हरिजन उद्धार कार्य उन्हें बहुत प्यारा था और उन्होंने हरिजनों के लिये कई बार अपनी जान की बाज़ी भी लगा दी।

गांधीजी हमारे बीच नहीं हैं, पर हमें निराश नहीं होना चाहिये। उनका देहांत लम्बी अवस्था और गौरव के शिखर पर हुआ। हम सब उठें और "अपने आंसू पोंछें, उठें, मन में आशा और आनंद भर कर उनसे कहें—बापू, विश्राम न करो, हमें विश्राम न करने दो। अपने वचन को पूरा करने की हमें शक्ति प्रदान करो।"

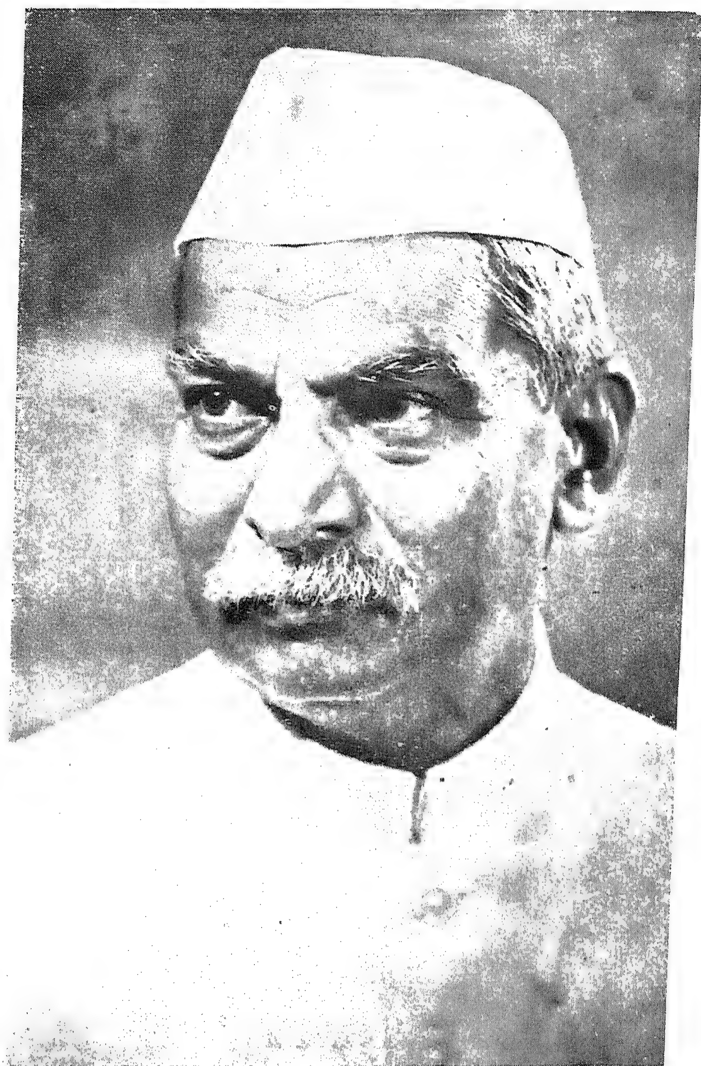


राजेन्द्रप्रसाद

जब राजेन्द्रप्रसाद आपकी ओर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो दो तीक्ष्ण, चमकदार नेत्र आप के हृदय के भीतर झांक रहे हैं। वह किसान जैसा मुखड़ा ऐसे नेत्रों से दैदीप्तमान है। इस महान एकनिष्ठ गांधीवादी के लिये सभी हृदयों में अपार सम्मान और प्रेम प्राप्त है। वह अत्यंत विनम्र हैं, और कभी कभी तो उनकी यह विनम्रता लोगों को बड़े असमंजस में डाल देती है। अधिकतर लोग यह भी कहते नज़र आते हैं कि वह ढीले व्यक्ति हैं और सरलता से दूसरों से प्रभावित हो जाते हैं। यह सच है कि झगड़ा करना उनके बस का नहीं और दूसरों पर अपनी राय लादना वह पसन्द नहीं करते, परन्तु यह कहना कि वह किसी बात को बिना सोचे-समझे मान लेते हैं, गलत है।

राजेन्द्रप्रसाद एक राजनीतिज्ञ ही नहीं, वरन् प्रकाण्ड विद्वान् भी हैं। उनमें बचपन से ही साहित्य तथा अन्य विषयों के प्रति गहरी रुचि रही है और उनपर उनका पूर्ण अधिकार है। वह कई भाषायें जानते हैं और सरलता से उनमें लिख बोल सकते हैं। उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में भी उच्च स्थान प्राप्त किये। उन दिनों ऐसा विश्वास किया जाता था कि बिहार बौद्धिक दृष्टि से बंगाल से हीन है। बिहार के लोग बौद्धिक प्रतिभा के लिये विख्यात नहीं हैं, पर राजेन्द्रप्रसाद ने यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया कि बिहार में भी उच्च बुद्धि विद्या निधान लोग हैं।

हिन्दी में उनकी आत्मकथा हिन्दी साहित्य को एक महान देन है। आत्मकथा पढ़ते समय उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की झलक मिलती है। इसकी भाषा सरल और स्पष्ट है। विचारों की अभिव्यक्ति में ईमानदारी है। यह गुण बहुत कम साहित्यिकोंमें पाये जाते हैं। सरदार वल्लभभाई



राजेन्द्र प्रसाद

पटेल ने इस पुस्तक के बारे में लिखा था कि "उनकी आत्मकथा के हर पृष्ठ में राजेन्द्र बाबू की सरलता और विनम्रता की स्पष्ट छाप है। उनकी आत्मकथा भारतीय जन आंदोलन के गत ३० वर्षों का इतिहास है।"

राजेन्द्रप्रसाद स्वभावत: संकोचशील हैं। उन्हें किसी पर क्रोध नहीं आ सकता। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है कि "मैं बचपन ही से दब्बू रहा हूं और किसी बड़े मामले में तुरंत कोई फैसला नहीं कर पाता।" जब गोखले ने राजेन्द्रप्रसाद को हिन्द सेवक समाज (सर्वेन्टस् आफ इंडिया सोसाइटी) में सम्मिलित होने के लिये लिखा तो वह इसके लिये तुरंत तैयार हो गये, परन्तु बड़े भाई की राय की उपेक्षा करने की न उनमें इच्छा थी और न हिम्मत ही। परन्तु फिर भी उन्होंने अपने भाई को एक अत्यंत विनम्र पत्र लिखा। इसमें उन्होंने 'हिन्द सेवक समाज' में सम्मिलित होने की अनुमति देने की प्रार्थना की जिससे उन्हें देश सेवा का पूरा अवसर मिल सके। इस पत्र से उनके महान व्यक्तित्व का पता चलता है। उन्होंने लिखा—"भाई साहब, भावुक होने के कारण आपके सामने बात करने की मेरी हिम्मत नहीं। आपको कठिनाई और परेशानी में डालकर चला जाना कृतघ्नता होगी, परन्तु ३० करोड़ जनता के लिये मैं कुछ त्याग करना चाहता हूं। श्री गोखले की संस्था में सम्मिलित होकर व्यक्तिगत रूप से मुझे कोई त्याग नहीं करना पड़ेगा। मुझको ऐसी शिक्षा मिली है कि मैं जिस भी परिस्थिति में रहूं अपने को उसी के अनुकूल बना सकता हूं। मेरा रहन सहन भी सादा रहा है और इसीलिये मुझे किसी विशेष सुविधा की आवश्यकता नहीं। जो कुछ भी मुझे संस्था से मिलेगा वही मेरे लिए पर्याप्त होगा। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि आपको त्याग नहीं करना पड़ेगा। आपकी बड़ी-बड़ी आशायें थीं और एक क्षण में उन पर पानी फिर जायगा। परन्तु इस क्षणभंगुर संसारमें धन, पद और सम्मान सभी नष्ट हो जाता है। जितना ही धन बढ़ता है, उतनी ही आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं। यद्यपि लोग कह सकते हैं कि उनको

पटेल ने इस पुस्तक के बारे में लिखा था कि "उनकी आत्मकथा के हर पृष्ठ में राजेन्द्र बाबू की सरलता और विनम्रता की स्पष्ट छाप है। उनकी आत्मकथा भारतीय जन आंदोलन के गत ३० वर्षों का इतिहास है।"

राजेन्द्रप्रसाद स्वभावत: संकोचशील हैं। उन्हें किसी पर क्रोध नहीं आ सकता। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है कि "मैं बचपन ही से दब्बू रहा हूं और किसी बड़े मामले में तुरंत कोई फैसला नहीं कर पाता।" जब गोखले ने राजेन्द्रप्रसाद को हिन्द सेवक समाज (सर्वेन्टस् आफ इंडिया सोसाइटी) में सम्मिलित होने के लिये लिखा तो वह इसके लिये तुरंत तैयार हो गये, परन्तु बड़े भाई की राय की उपेक्षा करने की न उनमें इच्छा थी और न हिम्मत ही। परन्तु फिर भी उन्होंने अपने भाई को एक अत्यंत विनम्र पत्र लिखा। इसमें उन्होंने 'हिन्द सेवक समाज' में सम्मिलित होने की अनुमति देने की प्रार्थना की जिससे उन्हें देश सेवा का पूरा अवसर मिल सके। इस पत्र से उनके महान व्यक्तित्व का पता चलता है। उन्होंने लिखा—"भाई साहब, भावुक होने के कारण आपके सामने बात करने की मेरी हिम्मत नहीं। आपको कठिनाई और परेशानी में डालकर चला जाना कृतघ्नता होगी, परन्तु ३० करोड़ जनता के लिये मैं कुछ त्याग करना चाहता हूं। श्री गोखले की संस्था में सम्मिलित होकर व्यक्तिगत रूप से मुझे कोई त्याग नहीं करना पड़ेगा। मुझको ऐसी शिक्षा मिली है कि मैं जिस भी परिस्थिति में रहूं अपने को उसी के अनुकूल बना सकता हूं। मेरा रहन सहन भी सादा रहा है और इसीलिये मुझे किसी विशेष सुविधा की आवश्यकता नहीं। जो कुछ भी मुझे संस्था से मिलेगा वही मेरे लिए पर्याप्त होगा। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि आपको त्याग नहीं करना पड़ेगा। आपकी बड़ी-बड़ी आशायें थीं और एक क्षण में उन पर पानी फिर जायगा। परन्तु इस क्षणभंगुर संसारमें धन, पद और सम्मान सभी नष्ट हो जाता है। जितना ही धन बढ़ता है, उतनी ही आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं। यद्यपि लोग कह सकते हैं कि उनको

धन से संतोष मिलता है परन्तु जिन्हें थोड़ा बहुत भी ज्ञान है, वह जानते हैं कि संतोष हृदय की वस्तु है, बाहर से नहीं प्राप्त होती। करोड़पति की अपेक्षा एक ग़रीब आदमी अपने थोड़े पैसों से ही अधिक संतुष्ट रहता है। ऐसी स्थिति में हमें ग़रीबी से घृणा नहीं करनी चाहिये। संसार के महान व्यक्ति सब से ग़रीब रहे हैं। यद्यपि आरम्भ में लोगों ने उन्हें यातनायें दीं और उनको घृणा-की दृष्टि से देखा, परन्तु मज़ाक़ उड़ानेवाले और यातना देनेवाले धूल में मिल गये, उनका कोई अस्तित्व नहीं, उनकी कोई बात भी नहीं करता, परन्तु जिन लोगों ने यातनायें भोगीं और घृणा के पात्र बने, वे करोड़ों लोगों के हृदय और मस्तिष्क में बसते हैं। अगर जीवन की मेरी कुछ भी आकांक्षा है तो वह यह है कि मैं देश की सेवा में लगूं। मुझ में मातृभूमि की सेवा के अतिरिक्त कोई भी महत्त्वाकांक्षा नहीं है। कौन राजा अथवा साधारण व्यक्ति है जो गोखले सा प्रभावशाली है अथवा उसको उनका सा ऊंचा स्थान और सम्मान प्राप्त है? फिर भी क्या वह ग़रीब व्यक्ति नहीं हैं?" यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि बचपन से ही राजेन्द्रप्रसाद में अपनी मातृभूमि की सेवा करने की उत्कट अभिलाषा थी और उन्होंने इसे सच कर दिखाया है। आपके भाई इस प्रार्थना को स्वीकार करने में असमर्थ रहे और एक आज्ञाकारी छोटे भाई की तरह आपने अपने बड़े भाई के आदेश को शिरोधार्य किया। आप उक्त संस्था में सम्मिलित होने के लिए पूना नहीं गये।

राजेन्द्रप्रसाद का जन्म ३ दिसम्बर सन् १८८४ को हुआ था। उनका जन्म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लगभग एक वर्ष पूर्व हुआ था। आपके पिताका नाम मुंशी महादेवसहाय था, जो ज़मींदार थे। राजेन्द्रप्रसाद अपने माता-पिता के पांचवें और सबसे छोटे लड़के थे। आप बहुत ऊंचे कायस्थ ख़ानदान से हैं। उन दिनों उनके गांव में ऐसी मान्यता थी कि जो शराब पियेगा वह कोढ़ी हो जायगा। राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके परिवार के किसी सदस्य ने शराब नहीं पी और अब तक इस परम्परा का निर्वाह किया जा रहा है।

आप सन् १८९३ में छपरा में स्कूल में दाखिल हुए। सन् १९०२ में कलकत्ता विश्वविद्यालय की इन्ट्रेंस (प्रवेशिका) परीक्षा में सर्व प्रथम आये। आप सर्व प्रथम बिहारी छात्र थे जिन्हें यह विशिष्ट सफलता मिली। बिहार की तत्कालीन प्रमुख मासिक पत्रिका "हिन्दुस्तान रिव्यू" ने राजेन्द्र-प्रसाद की प्रतिभासे प्रभावित होकर लिखा—'तरुण राजेन्द्र हर प्रकार से एक प्रतिभाशील छात्र है। आशा है कि वह विश्वविद्यालय में अपनी पूर्ण सफलता के उच्च स्तर को बनाये रखेगा और एक दिन आयेगा जब वह प्रांत के हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय) में न्यायाधीश का पद सुशोभित करेगा।' यह भविष्य वाणी अवश्य ही सच निकलती, अगर राजेन्द्रप्रसाद गांधीजी के प्रभाव में आकर राजनीतिक आन्दोलन में न कूदते। वकालत से उनकी आमदनी बहुत अच्छी थी और सारे वकीलों में उनके प्रति बहुत अधिक सम्मान था। आपके निर्मल चरित्र और ईमानदारी से सभी प्रभावित थे। उन्होंने बहुत पैसा कमाया परंतु आय का अधिकांश वह ग़रीबों, ज़रूरतमंदों और लोक हित के कार्यों को आर्थिक सहायता देने में खर्च कर देते थे। जब वकालत छोड़ कर वह असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए उस समय उनके पास बैंक में केवल १५) बाक़ी बचे थे। सन् १९०६ में आपने बी.ए. पास करके एम.ए. में अंग्रेज़ी ली और प्रत्येक परीक्षा में वह सर्व प्रथम रहे। वकालत आरंभ करने से पहले आप मुज़फ़्फ़र-पुर में कुछ समय तक प्रोफ़ेसर (महा विद्यालय में अध्यापक) रहे।

राजेन्द्र बाबू जब ५ वीं कक्षा में पढ़ते थे तभी १२ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह कर दिया गया था। उस समय उन्हें विवाह के वास्तविक महत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं था जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने विवाह के समय की मनोरंजक घटनाओं का सजीव वर्णन किया है।

चम्पारन आंदोलन ने बिहार और राजेन्द्र प्रसाद का नाम सभी की ज़बानों पर ला दिया। ब्रिटिश अत्याचारों के शिकार नील की खेती करने

वालों की तरफ से गांधीजी के नेतृत्व में चम्पारन में आन्दोलन शुरू हुआ। आंदोलन सफल रहा और ब्रिटिश सरकार को घुटने टेकने पड़े। जनता को विजय मिली और गांधीजी को मिले राजेन्द्रप्रसाद, जो आगे चलकर गांधीजी के प्रमुख सहयोगी बने। स्वर्गीय श्री सत्यमूर्ति ने राजेन्द्र प्रसाद की प्रशंसा में लिखा था कि "भारत में उनकी कोटिके बहुत कम व्यक्ति हैं और यदि भारत के राजनीतिक जीवन का उत्तराधिकार आवश्यक समझा गया तो मेरा ख़याल है कि महात्मा गांधी का अगर कोई उत्तराधिकारी बन सकता है तो वह राजेन्द्रप्रसाद के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता।"

राजेन्द्रप्रसाद कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके हैं और उसके महामंत्री के पद पर भी काम कर चुके हैं। जब आप कलकत्ता में पढ़ते थे उस समय सन् १९०६ के २२ वें कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। राजेन्द्रप्रसाद ने एक स्वयंसेवक के रूप में अधिवेशन में कार्य किया। वह सन् १९३४ में सर्वसम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। बाद में जब कभी भी कोई कठिनाई पैदा हुई तो उसे दूर करने के लिए आपका सहयोग लिया गया। त्रिपुरारी कांग्रेस के बाद सभी की आंखें आप की ही ओर लगीं और एक लंबे गरमा गरम वाद विवाद के बाद आप कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। आप कांग्रेस महासमिति के सन् १९१२ से और कार्य समिति के सन् १९२२ से राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के पूर्व तक बराबर सदस्य रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आप भारत सरकार के खाद्य मंत्री बनाए गए। इस पद पर आपने सफलतापूर्वक कार्य किया, और अपने सारे सहयोगियों को प्रभावित किया। आप संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गए। आप को सभी का विश्वास और सम्मान प्राप्त है। राजेन्द्रप्रसाद को देखकर बहुत कम लोगों को विश्वास होगा कि वह विदेश भ्रमण भी कर चुके हैं। वास्तविकता यह है कि विदेशों में वह बहुत घूमे हैं। वह जर्मनी, इटली आदि बहुत से देशों की यात्रा कर चुके हैं। आस्ट्रिया के ग्रेज़ नगर में एक शांतिवादी सम्मेलन में राजेन्द्रप्रसाद ने अहिंसात्मक प्रतिरोध के बारे में

भारतीय दृष्टिकोण रखना चाहा, परंतु फासिस्त गुंडों ने सम्मेलन की सभा में मार-पीट मचा दी जिससे राजेन्द्रप्रसाद को गहरी चोटें आयीं।

राजेन्द्रप्रसाद ज़बरदस्त संगठन कर्त्ता हैं और संगठन करने की उनकी शक्ति की परीक्षा बिहार भूकम्प के समय हुई। जेल में जब आप बहुत बीमार पड़ गए तो उन्हें दवा कराने के लिए रिहा कर दिया गया। भूकम्प ने बिहार को बरबाद कर डाला था। पीड़ितों की चीख़ों से आप तिलमिला उठे। अपने गिरे स्वास्थ्य की परवाह न कर तन, मन, धन से सहायता कार्य में जुट गए। आपने भूकम्प पीड़ितों की जो महान सेवा की उसकी सारे देश में प्रशंसा हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू अपनी आत्मकथा में राजेन्द्रप्रसाद के बारे में लिखते हैं—"देखने में वह असली बिहारी किसान जान पड़ते हैं और जब तक उनकी निर्विकार दृष्टि और सौम्य चेहरे पर गौर न कीजिए तब तक पहली बार की मुलाकात में वह प्रभावित नहीं करते। कोई भी व्यक्ति उनकी आंखों और उनके चेहरे को नहीं भूल सकता। उनसे होकर सत्य झांकता है और इसमें कोई संदेह नहीं। आधुनिक दुनियादारी के हिसाब से वह देहाती, कुछ संकुचित दृष्टिवाले तथा भदेस हैं, परंतु उनकी असाधारण प्रतिभा, उनकी निश्छल बात, उनकी कर्मठता और भारतीय स्वतंत्रता के प्रति उनकी लगन ऐसे गुण हैं जिनके कारण केवल उनके प्रान्त में ही नहीं, बल्कि सारे देश में लोग उनकी इज़्ज़त करते हैं। किसी भी प्रांत में किसी को नेतृत्व की ऐसी मान्यता नहीं प्राप्त है जैसी राजेन्द्रप्रसाद को मिली है। राजेन्द्र-प्रसाद के अलावा बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि गांधीजी के संदेश को उन्होंने पूर्ण रूप से अपनाया है। यह सौभाग्यकी बात थी कि बिहार में सहायता कार्य के लिए नेतृत्व करने के लिए उनके ऐसा व्यक्ति मिला। उनके प्रति आस्था ही का प्रमाण है कि सारे भारत से सहायता के लिए लम्बी रक़में मिल सकीं। अस्वस्थ होते हुए भी वह सहायता कार्य में कूद पड़े। उन्हें अपनी शक्ति से अधिक काम

करना पड़ा क्योंकि प्रत्येक कार्यके वही संचालक थे और प्रत्येक व्यक्ति सलाह लेने के लिए उन्हीं के पास दौड़ता था।" बिहार के भूकम्प पीड़ितों के लिए राजेन्द्रप्रसाद आशा और साहसके प्रकाश स्तम्भ थे। बिहार की जनता उनके इस कार्य को कभी भी नहीं भुला सकती।

राजेन्द्र प्रसाद बहुत अच्छे साथी हैं। उनके साथ रहकर आप सदैव उनकी ईमानदारी से भारी सहायता और सहयोग पर निर्भर रह सकते हैं। उनके चेहरे पर कुछ ऐसी आध्यात्मिक कांति है जो प्रेरणा और साहस प्रदान करती है। वह कभी भी पदों के इच्छुक नहीं रहे, परंतु ऊंचे पद उनके चरणों पर गिरते हैं और वह कर्त्तव्य समझ कर उनको संभालते हैं। वह अत्यंत उदार हृदय और क्षमाशील हैं। विश्वास की ज्योति सदैव उनके हृदय में जलती रहती है। उनके स्वभाव में उग्रता और तीक्ष्णता का नाम निशान नहीं है। उन्होंने अपने गुरू महात्मा गांधी का पूर्ण रूप से अनुसरण किया है और जब कभी उनसे मतभेद भी हुआ तब भी राजेन्द्र-प्रसाद ने उनकी बात को स्वीकार किया, क्योंकि आपको यह विश्वास था कि बापू को गलती न करने की आदत है। आपने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "मुझे विश्वास हो गया था कि बापू बहुत ही दूरदर्शी हैं। इसलिए मैंने अपने दृष्टिकोण को उनके सामने रखना नियम बना लिया है और यदि उन्होंने उसको मान लिया तो ठीक ही है, वरना मैं उनकी सलाह को स्वीकार कर लेता हूं।"

स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नाइडू ने राजेन्द्रप्रसाद के बारे में लिखा था कि "बाबू राजेन्द्रप्रसाद के भव्य व्यक्तित्व के बारे में स्वर्ण लेखनी को मधु में डुबोकर लिखना होगा। उनकी असाधारण प्रतिभा, उनके स्वभाव का अनोखा माधुर्य, उनके चरित्र की विशालता और आत्म त्याग के उनके गुण ने शायद उन्हें हमारे सभी नेताओं से अधिक व्यापक और व्यक्तिगत रूप से प्रिय बना दिया है। सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में मैं इससे अधिक क्या कह सकती हूं कि गांधीजी के निकटतम शिष्यों में उनका वही स्थान है जो ईसा मसीह के निकट सेंट जान का था।"



जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू

पंडित जवाहरलाल नेहरू उच्च मानवीय भावना सम्पन्न अद्वितीय महापुरुष हैं। वह युग की एक महान विभूति हैं। अधिकांश लोग उन्हें धुरन्धर लेखक, विचारक या राजनीतिक पुरुष के रूप में जानते हैं। पर उनके व्यक्तित्व में और भी विशेषतायें हैं। इनकी झलक उनके जीवन से सम्बद्ध छोटी-छोटी घटनाओं, विचारों तथा कहानियों से मिलती है।

× × ×

आकाश, चांद, तारे और पर्वतों से उन्हें प्रेम है। सूर्यास्त उन्हें मुग्ध कर देता है तो नवोदित सूर्य उनकी भावनाओं को जगाता है। पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र उन्हें आराम देता है। इन सब को देखकर उन्हें सान्त्वना मिलती है। पर जी भर प्रकृति का सौन्दर्य निरखने का उन्हें अवसर कहां? कई दिनों, महीनों, वर्षों तक कारागृह की संकीर्ण झिझरियों से उन्होंने चांद, तारे और आकाशको देखा। आज कल भी अपने अति व्यस्त जीवन में कभी-कभी इनको निहार लेते हैं। वह किसी महान उद्देश्यकी पूर्ति में व्यस्त हैं जिसकी जागरूकता में निज की आकांक्षाओं तथा इच्छाओं की पूर्ति को वह कुछ भी महत्त्व नहीं देते।

नेहरू स्वभाव से उदार हैं। यदि वह आप को कुछ देते हैं तो बड़ा संकोच अनुभव करते हैं। उनकी झिझक से ऐसा लगता है मानो वह यह अनुभव करते हैं कि उन्होंने पर्याप्त नहीं दिया। वह उन लोगों का बड़ा ध्यान रखते हैं जिन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते हैं। उनकी यथाशक्ति सहायता करने का यत्न करते हैं। सहायता करते हैं और अपने इस सद्कार्य को भूल जाते हैं। इसकी कभी चर्चा नहीं करते। इसके बदले में कोई अपेक्षा

नहीं करते। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले काल में सभी तरह के लोग उनसे सहायता पाने आते थे। कोई विमुख नहीं जाता था। मुझे सन् १९४२ की एक घटना याद है। एक कांग्रेसजन जिसने सत्याग्रह में बहुत क्षति उठाई थी, आनन्द भवन आया। उसने नेहरू से सहायता मांगी। नेहरू अपने कमरे में गए और आगन्तुक के लिए नोटों की खासी अच्छी गड्डी अपने निजी सचिव के हाथों भेज दी। आगन्तुक ने वे नोट आनन्द भवनके बरामदे में डाल दिए और कहने लगा कि "इतनी रकम से तो मेरी कठिनाइयां हल नहीं होंगी।" इस की सूचना नेहरू को दी गई। उन्होंने गुपचुप कुछ और नोट भेज दिये। वह व्यक्ति "जवाहरलाल नहरू की जय" बोलता हुआ चला गया।

× × ×

नेहरू को अपने नौकरों चाकरों से खास स्नेह है। चाहे जेलमें हों, चाहे प्रधान मंत्री के भवन में, वह उनको भूलते नहीं। हाल में दो पुराने नौकरों की आंखें करीब-करीब चली गई थीं। इस की खबर मिलते ही नेहरू ने उनका इलाज करवाने के लिए यथेष्ट खर्चा भेज दिया। एक की आंख तो कुछ-कुछ सुधर भी गई है। कुछ दिन हुए वह बमरौली हवाई अड्डे पर उनके दर्शन करने गया था। देखते ही कहा—"पंडितजी को फिर से अपनी आंखों से देखनेका बड़ा भाग है!"

अपने नौकरों की समस्याओं तक प्रवेश करने का उनका तरीका अनोखा है। अहमदनगर जेल से एक बार अपनी बहिन को जो नैनी जेल में थीं, एक पत्र लिखा कि आनन्द भवन के नौकरों का वेतन इसलिए बढ़ा दिया जावे कि उनकी जिम्मेवारी नेहरू परिवार के वहां न रहने से काफी बढ़ गई है।

जब नौकरों का काम कम हो जाय तब उनका वेतन बढ़ाने की बात जवाहरलाल ही सोच सकते हैं!

नेहरू की उदारता ने मेरे मस्तिष्क पर गहरी छाप डाली है। एक छोटी सी घटना की स्मृति भुलाये नहीं भूलती। उदार व्यक्तियों की कमी नहीं है किन्तु नेहरू की उदारता का ढंग निराला है। सन् १९४१ में मैं 'नेशनल हेराल्ड' का सम्वाददाता था। मेरे यहां टेलीफोन नहीं था। उसकी मुझे नितान्त आवश्यकता थी। इसका उन्हें पता चल गया। "नेशनल हेराल्ड" के संचालक मंडल के यद्यपि वह प्रधान थे, फिर भी नेशनल हेराल्ड के अधिकारियों से न कहकर स्वयं अपनी ओर से टेलीफोन लगवा दिया। एक दिन कहा—"सुनो, तुम्हारे यहां टेलीफोन नहीं है। मैं हेराल्ड को तो लिख नहीं सकता, पर तुम उसे लगवा लो। खर्चे के लिए यह चेक लो।" फिर २ अगस्त सन् १९४२ को जब वह बम्बई में कांग्रेस कमेटी की ऐतिहासिक बैठक में सम्मिलित होने जा रहे थे, मुझ से बोले—"तुम जानते हो, मैं बम्बई जा रहा हूं, कदाचित गिरफ्तार हो जाऊं। लो अगले दो महीनों के खर्चे के ४२ रुपये। किसी कारण तुम्हारा टेलीफोन न कटना चाहिए। और लो यह चिट्ठी, जब तुम्हें रुपये की आवश्यकता टेलीफोन के लिए हो, विजयलक्ष्मी पंडित या इंदिरा या बी. एन. वर्मा से ले लेना। पत्र इस प्रकार था—

श्री पी. डी. टंडन,

आगामी दो मास के शुल्क में ४२) दे रहा हूं। भविष्य में यह फोन कार्य करता रहे, अतः अक्तूबर से आगे इसका मासिक शुल्क श्री विजयलक्ष्मी पंडित, इंदिरा नेहरू-गांधी तथा बी. एन वर्मा में से किसी एक से लिया जाये।

ह: ज. नेहरू
२-८-४२

कितने ऐसे विचारवाले व्यक्ति होंगे जो दूसरों पर बिना किसी प्रतिदान की आशा के भी कृपालु हैं!

× × ×

ठाकुर चन्द्रसिंह गढ़वाली ने पेशावर की निरस्त्र जनता पर गोली चलाने से इंकार कर दिया था। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें आजन्म कारावास की सजा दी। वह सन् १९४१ में जेल से मुक्त हुए। उन दिनों नेहरू देहरादून जेल में थे। चन्द्रसिंह ने उन्हें पत्र लिखा और अपनी समस्याओं से अवगत कराया। नेहरू ने अनुभव किया कि इतने दिन जेल में रहने के कारण चन्द्रसिंह का बाहरी संसार से नगण्य सम्पर्क रहा। स्वाभाविकतः वह सहायता का स्वागत करेगा। उन्होंने जेल से चन्द्रसिंह को निम्न-लिखित पत्र लिखा—

"प्रिय चन्द्रसिंहजी,

आपका पत्र मिला। आपके छूटने की खबर सुनकर मुझे खुशी हुई। आप आनन्द भवन में बहुत इतमीनान से जब तक चाहें रहें, हमारे मेहमान होकर। मुझे अफसोस है कि मैं खुद वहां नहीं हूं आप से मिलने को। जब बापूजी आप को बुलावें आप वर्धा जाइए और जितने दिन तक कहें वहां उन के पास रहिए। फिर वापस इलाहाबाद आकर आनन्द भवन में ठहरिए। मैंने महादेव भाई से ज़िक्र कर दिया था।

आपका

जवाहरलाल नेहरू"

× × ×

आनन्द भवन में जब-जब वह आकर ठहरते थे, तो हर तरह के लोग उनसे मिलने आते थे। गरीब तो सहायता पाने जाते थे, त्रस्त तथा पीड़ित उद्धार कराने जाते थे। अधिकतर बहुत से लोग तो यों ही उनका मकान घेरे रहते थे और रह-रह कर 'जवाहरलाल नेहरू की जय' के नारे लगाते थे। इन आगन्तुकों और नारों से उनके काम में बाधा पड़ती थी किन्तु वह जानते थे कि केवल प्रेम ही इन आदमियों को वहां इकट्ठा कर देता था। समया-नुसार वह बाहर बरामदे में भी निकल आया करते थे और बड़ी सद्भावना से

उनसे बातें कर लिया करते थे। एक हलकी सी मुस्कान के साथ-साथ वह सबसे कुछ न कुछ पूछ-ताछ जरूर ही कर लिया करते थे। नेहरू को ऐसे समय बातचीत करते देखने में बड़ा मनोरंजन होता है, उनके मुखड़े पर भावनायें द्रुतगतिसे बदलती रहती हैं, जैसे कि वह उन्हें सलाह देते हैं, सांत्वना प्रदर्शित करते हैं, या कभी-कभी डाट फटकार भी सुनाते हैं।

× × ×

नेहरू पर अधिकतर जल्दी गुस्सा हो जानेका दोष लगाया जाता है। पर मुझे तो वह इसी अवस्था में और प्रिय लगते हैं। यह सही है कि इस से कुछ लोगों को चोट पहुंचती है। और वह यह जानते हैं कि यह उन की कमजोरी है। पर वह क्षमा भी तो मांग लेते हैं। क्या अपने सर्व प्रिय व्यक्ति की यह थोड़ी सी कमजोरी हम क्षमा नहीं कर सकते ? उन का गुस्सा चिरस्थायी नहीं है, और वह किसी का बुरा नहीं चेतते। इसी कमजोरी की एक बार चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा था—"मुझे भय है कि मैं एक बड़ा ही निर्बल मानव हूं, अधिकतर भूलें करता हूं, और कभी-कभी कड़े शब्द भी बोलता हूं। पर कभी भी इस पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया। उस को बहुत बुरा नहीं माना, यह लोगों की उदारता है।"

× × ×

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट के व्यक्तिगत दूत कर्नल जान्सन जब यहां पर थे, वह नेहरू से मिलकर मुग्ध हो गए थे। भारत छोड़ने से पूर्व अपने वक्तव्य में उन्होंने नेहरू के प्रति श्रद्धा का पर्याप्त परिचय दिया था। क्रिप्स समझौता वार्त्ता के दौरान उन को नेहरू से मिलने का अधिकतर अवसर मिलता था। नेहरू को चूड़ीदार पैजामा में देखकर उन्हें आश्चर्य होता था। एक दिन क्षमा याचना करते हुए नेहरू से पूछ ही बैठे; "धृष्टता क्षमा करके बतलाइए, श्री नेहरू कि आप इस पैजामें के अन्दर आखिर कैसे घुस जाते हैं!" तुरन्त नेहरू ने कहा,—"पर

वे मुझपर ठीक-ठीक सरककर चढ़ जाते हैं।" लोग हँस पड़े। बाद में नेहरू ने जान्सन को चूड़ीदार पैजामे के पहिनने की कुंजी बताई।

× × ×

नेहरू परिचर्या करने में कुशल हैं। अहमदनगर जेल में जब कभी कोई साथी अस्वस्थ हो जाता था तो वह रात-रात जगकर उसकी देख भाल करते थे। उन के एक साथी का कहना है कि "रोगी उन की उपस्थिति में बड़ा विश्वास अनुभव करता है। उस का कष्ट बहुत कुछ कम हो जाता है।"

× × ×

नेहरू का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है और उन्हें इस पर गर्व है। वह नियमित रूप से व्यायाम करते हैं।

वह परिश्रमशील हैं। अड़चनों और कठिनाइयों से घबड़ाते नहीं हैं। उन का सामना करते हैं। स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल बनाते हैं। इलाहाबाद में कड़ी गरमी पड़ती है। पर नेहरू ने इस गरमी का भी सामना किया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व वह आनन्द भवन में ऊपरी मंजिल के एक कमरे में गरमी के दिनों में भी अपने काम में जुटे रहते थे। इस कमरे में खसकी टट्टियां भी नहीं लगवाते थे। एक दिन लाल-बहादुर शास्त्री उनसे मिलने ऊपर के कमरे में गए। कमरा बहुत ही गरम था। उन्होंने नेहरू से कहा—"यह कमरा तो बहुत गरम है। आप दिन में इस कमरे में क्यों रहते हैं?" नेहरू ने कहा—"मुझे तो विशेष गरम नहीं लगता। आदत भी पड़ गई है। मुझे इस कमरे में काम करना पसंद है क्योंकि वर्षों से इस में काम करता आ रहा हूं।" शास्त्री ने कहा कि फिर भी इसकी गरमी कम करने के लिये कोई प्रबन्ध करना चाहिये। नेहरू ने उन का यह सुझाव भी टालते हुए कहा—"आदत डालनी चाहिये। आराम, और अधिक आराम के फेर में नहीं पड़ना चाहिये।"

नेहरू के खान-पान का भी अपना ढंग है। वह नियमित समय पर और थोड़ा खाते हैं। दावत में यदि कोई फल को काटकर या छीलकर उनके सामने रखे तो वह इसे गंदी आदत समझते हैं। खाना बरबाद करने को भी वह बुरा समझते हैं। एक ही समय में बहुत-सी खाने की चीजों को सामने रखना वह पसंद नहीं करते। यदि कोई उन्हें अधिक खिलाने का यत्न करता है तो इसे भी वह नापसंद करते हैं।

× × ×

नेहरू सभाओं में सुप्रबन्ध चाहते हैं। अधिकतर देखा गया है कि यदि सभा में कुछ गड़बड़ी होती है तो प्रबन्धक यहां वहां दौड़ने लगते हैं। "बैठ जाइये" और "शांत रहिये" के नारे लगाने लगते हैं। इससे और भी कोलाहल बढ़ जाता है। इससे नेहरू भड़क जाते हैं। वह सबसे पहले यह चाहते हैं कि शांति स्थापना का काम पूर्णतः उन्हीं पर छोड़ दिया जाय। प्रबन्धक अपने स्थानों से न हटें तथा बिलकुल शांत रहें। इसके बाद वह बाकी सब काम ठीक कर लेते हैं।

सभाओं में वह अपनी प्रशंसा के मानपत्र कभी पसंद नहीं करते। छिछली कविताओं तथा लम्बे चौड़े मानपत्रों और मांगपत्रों से उन्हें घृणा है।

नेहरू चाहते हैं कि जनता अनुशासन और शिष्टता सीखे। वह चाहते हैं कि जनता अपने सम्मान के प्रति जागरूक हो उठे। वह उनसे पैर नहीं पकड़वाना चाहते। वह पैर छूने को आदर की चीज़ नहीं मानते। उसे बुरी आदत मानते हैं और चाहते हैं कि लोगों की यह आदत छूटे।

एक दिन कुछ लोगों से बात चीत करते हुए कहा—"भाई आप लोग मेरे पैर क्यों छूते हैं ? आप लोग किसी के पैर न छुआ करें। अपना सिर और अपनी कमर तनी रखिये, किसी के सामने झुकिये नहीं।"

× × ×

नेहरू बहुत संवेदनशील हैं। वह यह अच्छी तरह जानते हैं कि देशवासियों के हृदय में उनके प्रति सच्चा प्रेम और सम्मान है। जनता उनके आदेशों का निर्विकार भाव से पालन करती है। वह यह भी भली-भांति जानते हैं कि वह जनता की सभी समस्याओं को अभी तक नहीं सुलझा सके हैं पर उन्हें जनता तथा उस की समस्याओं का सदैव ध्यान रहता है। एक बार उन्होंने कहा—

"मुझे इतना मान और वैभव प्राप्त हुआ जितना कदाचित् ही किसी व्यक्ति को मिले। मैं जनता के अपार प्रेम के बोझ से दब जाता हूं। आपने मुझे प्रधानमंत्री बनाया, यह निश्चय ही बड़े गौरव और दायित्व का पद है। भारत जैसे देश का प्रधानमंत्री होना बहुत ही दायित्व-पूर्ण है। पर आपने मेरे प्रति जो सम्मान और प्रेम प्रकट किया है वह कदाचित् ही किसी प्रधानमंत्री को प्राप्त हो। इसके लिए मैं असीम आभारी हूं। आप ने मुझे जो जगह दी वह भारत की करोड़ों जनता के दिल और दिमाग़ में जगह है। मुझे इस पर आश्चर्य होता है। मैं अपने जीवन के सांध्यकाल में हूं, पर एक पुरानी ज्वाला है जो मुझ में अब भी प्रज्वलित है। जब तक मेरा शरीर भस्म नहीं हो जाता तब तक मैं शक्ति भर जनता की सेवा करता रहूंगा जिस ने मेरे प्रति इतना विश्वास और प्रेम प्रकट किया है।"

× × ×

नेहरू हमारी आशा और हमारा अभिमान हैं। हमारे युग की एक चुनी हुई अनुपम आत्मा हैं। संसार में शायद ही कतिपय ऐसे उच्च मानव होंगे जो अपनी आत्मा और व्यक्तित्व से इस प्रकार चमकते हों जिस प्रकार जवाहरलाल नेहरू।





सुभाषचन्द्र बसु

नेताजी सुभाषचन्द्र बसु

नेताजी सुभाषचन्द्र बसु इतिहास के उस पृष्ठ की शोभा बढ़ाते हैं जिसमें उनका नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित है। यह ओजस्वी देशभक्त, मातृभूमि का यह महान् लाल युगों युगों तक कहानियों और गीतों में स्मरण किया जायगा, जनता को पावन कार्यों और महान् त्यागों के लिये उत्प्रेरित करेगा। मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये इस महान् देश-भक्त का जीवन एक नाटक है जिसमें नेताजी महानायक हैं। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिये सभी स्वतंत्र शक्तियों का संघटन किया तथा उन्हें लक्ष्य की पूर्ति के लिये सर्वस्व बलिदान करने के लिये प्रेरित किया। कदाचित् ही किसी अन्य नेता में विद्रोही राष्ट्र के इतने गुण—प्रज्वलित देशभक्ति, विकलता और त्याग की ज्वलंत भावना हो। वह अपने अनु-चरों से कहा करते थे—"इसे कभी न भूलो कि सबसे बड़ा पाप गुलाम रहना है।" वह उन्हें यह भी याद दिलाते रहते थे कि "अनीति तथा अन्याय से समझौता करना सबसे बड़ा अपराध है।" वह यह भी कहा करते थे कि "सबसे बड़ा गुण विषमता के विरुद्ध संघर्ष करना है, चाहे इसके लिये कुछ भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।"

भारतीय इतिहासकार भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ने में नेताजी तथा उनकी आज़ाद हिन्द फ़ौज के कार्यों का सगर्व उल्लेख करेंगे। पूर्वी एशिया में नेताजी की गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार आतंकित थी। आज़ाद हिन्द फौज की पराजय के बाद भी वह भयभीत थी, क्योंकि आज़ाद हिन्द फौज की भावना जीवित थी तथा वह जनता में फैल गई थी। यद्यपि आज़ाद हिन्द फौज परास्त हो गयी, परन्तु उसने विजय के लिये पथ प्रशस्त कर दिया।

नेताजी का जन्म २३ फरवरी सन् १८९७ में कटक में हुआ। सन् १९१३ में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की मेट्रिक परीक्षा द्वितीय स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। सन् १९१४ में अचानक वह आध्यात्मिक गुरु की खोज में हरद्वार के लिये चल दिये, पर कुछ समय बाद वापस लौट आये और फिर विद्याध्ययन करने लगे। सन् १९१६ में कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालिज के एक अध्यापक ओटन ने भारतीयों के प्रति कुछ अभद्र शब्द कहे, इस पर बसु ने उन्हें पीटा। इस घटना से वह कालिज से निकाल दिये गये। सन् १९१९ में उन्होंने बी० ए० परीक्षा दर्शन में आनर्स के साथ प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। सन् १९२० में उन्होंने आई० सी० एस० परीक्षा चतुर्थ स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। बसु की दर्शन विषय में बड़ी रुचि थी। उन्होंने सन् १९२१ में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से दर्शन में आनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने कुछ दिन सरकारी पद पर कार्य किया परन्तु उसे अपनी स्वतंत्र प्रकृति के प्रतिकूल पाकर इससे पद त्याग कर दिया। इसके बाद उनकी गांधीजी से भेंट हुई। दोनों एक दूसरे से प्रभावित हुए।

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में वह देशबन्धु चित्तरंजनदास तथा मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के साथ गिरफ्तार हुए। उन्हें छः महीने कारावास का दण्ड मिला। इसके बाद तो उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा।

२९ जनवरी सन् १९३९ में वह अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। सन् १९४० में उनका कांग्रेस की नीति रीति से गहरा मतभेद हो गया तथा उन्होंने पृथक दल 'फार्वर्ड ब्लाक' (अग्रगामी दल) का संघटन किया। २७ जनवरी सन् १९४१ को यह प्रकट हुआ कि वह कलकत्ता के अपने निवास से रहस्यपूर्ण ढंग से गुप्त हो गये। वहां से वह काबुल, बर्लिन, रोम और टोकियो पहुंचे। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य-शाही के विरुद्ध युद्ध के लिये भारतीयों को संघटित किया। पूर्वी एशिया

के देशों के भारतीयों और भारतीय सेना के आत्म-समर्पित सैनिकों का संघटन करके उन्होंने आज़ाद हिन्द फौज निर्मित की। इस सेना को बड़ी सफलता मिली, परन्तु यूरोप में युद्ध की स्थिति बदल जाने के कारण आज़ाद हिन्द फौज की कठिनाइयां बढ़ गईं। इस बीच दुर्घटनावश नेताजी की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बारे में विवादास्पद बातें कही जाती हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि वह जीवित हैं। पर कर्नल हबीब रहमान के कथनानुसार नेताजी की हवाई दुर्घटना में मृत्यु हो गई। वह हवाई जहाज़ तैकोहू हवाई स्टेशन पर १६ अगस्त सन् १९४५ को गिर पड़ा। कर्नल रहमान का कहना है कि मैं नेताजी के साथ उस हवाई जहाज़ में था। नेताजी हवाई दुर्घटना से बिलकुल विचलित नहीं हुए। दुर्घटना के कारण हवाई जहाज की पेट्रोल की टंकी फूट गई तथा इस पेट्रोल की बौछार नेताजी की सूती खाकी वर्दी पर पड़ गई और उसमें आग लग गई। पर नेताजी किसी तरह टूटे हवाई जहाज़ से बाहर निकल आये। उनकी वर्दी अब भी जल रही थी। उन्होंने अपने बुशकोट का कमरबंद खोलने की कोशिश की। उनका चेहरा आग से जल गया था तथा लोहे से आहत हो गया था। कुछ क्षण बाद वह जमीन पर गिर पड़े। वहां से उन्हें अस्पताल ले जाया गया। जापानियों ने नेताजी को बचाने के लिये शक्ति भर यत्न किये परन्तु वे असफल रहे। कर्नल हबीब रहमान का यह भी कहना है कि नेताजी ने अंत में कहा, "हबीब, मेरा अन्त बहुत निकट है। मैं आजीवन देश को स्वतंत्र करने के लिये संघर्ष करता रहा। देश की स्वतंत्रता के लिये ही मैं प्राण विसर्जन कर रहा हूं। देश जाकर देशवासियों से कहना कि वे भारत का स्वतंत्रता संग्राम जारी रखें। भारत स्वतंत्र होगा और बहुत ही शीघ्र स्वतंत्र होगा।" उनके शब्द भविष्य-वाणी की तरह सत्य सिद्ध हुए।

नेताजी आध्यात्मिक विश्वासवाले व्यक्ति थे। परमेश्वर में उनका विश्वास, साहस और आशावादिता का अटूट श्रोत था। वह बिना किसी

झिझक के शक्तिशाली से शाक्तिशाली सत्ता के विरुद्ध डट जाते थे। आध्यात्मिक विश्वास से उन्हें शान्ति, दृढ़ता, आत्म विश्वास तथा विनम्रता प्राप्त होती थी। जब वह संघर्षरत रहते थे, तब भी शांति और एकांत की कामना करते थे। हिमालय तो उन्हें सदैव आमंत्रण सा देता रहता था। उनमें संन्यासी के कुछ गुण थे। सिंगापुर में वह कभी कभी रामकृष्ण मिशन के स्वामीजी से मिला करते तथा स्रष्टा का ध्यान किया करते थे। कभी कभी बहुत रात बीते वह अज्ञात रूप में मिशन के प्रार्थना भवन में हाथ में माला लेकर बन्द हो जाते थे तथा घण्टों साधना किया करते थे। नेताजी के एक निकट साथी तथा अस्थायी आज़ाद हिन्द सरकार के एक मंत्री श्री एस० ए० अय्यर के कथनानुसार उनके पास अपनी साधना के बाह्य प्रतीक एक छोटी गीता, एक छोटी तुलसीमाला तथा पढ़ने का एक चश्मा था। ये एक छोटे से बटुए में रखे रहते थे। इस बटुए के सम्बन्ध में उनके निजी नौकर के अतिरिक्त और कोई कुछ भी नहीं जानता था। नेताजी ईश्वर के बारे में चर्चा नहीं करते थे। वह तो ईश्वर के सत्संग में जीवन व्यतीत करते थे।

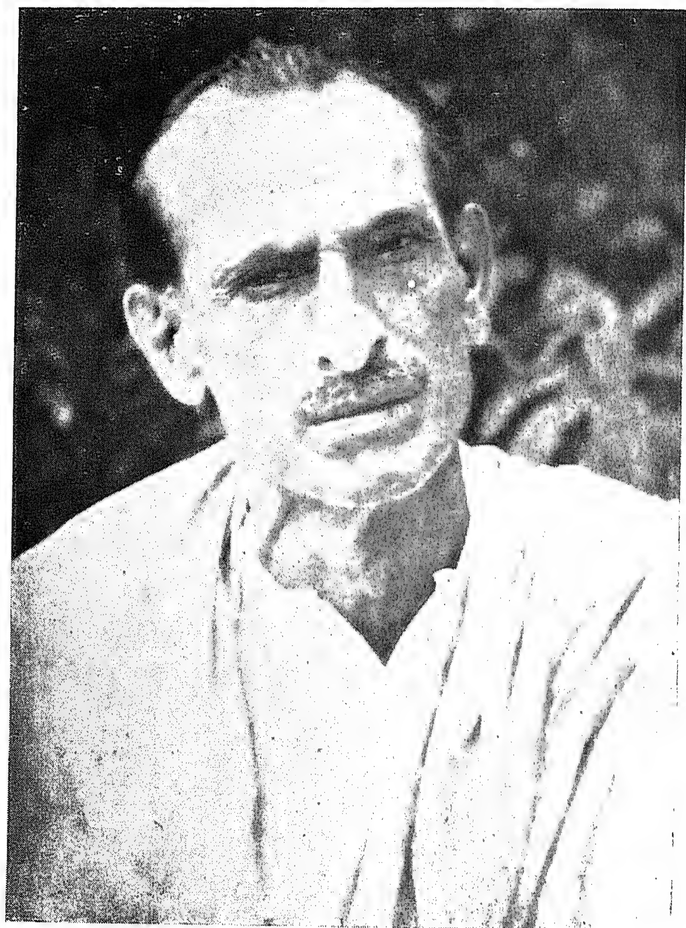
नेताजी जब भारत में थे तब कांग्रेस नेताओं और महात्माजी से उनके गहरे मतभेद थे। वह उनकी नीति से सहमत नहीं थे। उनका विश्वास था कि देश को स्वतंत्र करने के लिये विदेशी सहायता की आवश्यकता थी। इसे भारत के उनके दूसरे सहयोगी मानते नहीं थे। इसके बावजूद उनकी गांधीजी में श्रद्धा थी। पर वह उनकी अहिंसा में विश्वास नहीं करते थे। जब वह देश के बाहर काम कर रहे थे तब भी गांधीजी के प्रति बड़ा आदर भाव रखते थे। उन्होंने अपने एक रेडियो भाषण में कहा था—"हे राष्ट्रपिता, इस पावन स्वतंत्रता संग्राम में हम आपकी शुभ कामनायें तथा आपका आशीर्वाद चाहते हैं।" ये शब्द उन्होंने ६ जुलाई १९४४ को रेडियो से महात्मा गांधी के नाम संदेश में कहे थे। यह संदेश उस समय प्रसारित किया गया था जब आज़ाद हिन्द सेना

भारतीय भूमि पर युद्ध कर रही थी। उन्होंने कहा—"मैं उस प्रचार से अवगत हूं जो हमारा शत्रु मेरे विरुद्ध कर रहा है। केवल वही व्यक्ति कठपुतली हो सकता है जिसमें आत्म सम्मान और आत्म गौरव की भावना नहीं है। मेरे घोर शत्रु भी यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि मैं राष्ट्रीय सम्मान और आत्म गौरव बेच सकता हूं !...... इस समय आज़ाद हिन्द फौज अनेक कठिनाइयों के बावजूद भारत भूमि पर युद्ध कर रही है तथा धीरे धीरे, पर निश्चित रूप से प्रगति कर रही है। यह सशस्त्र संग्राम तब तक चलता रहेगा जब तक कि भारत से सभी अंग्रेज़ बाहर नहीं निकाले जाते तथा हमारा तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा दिल्ली के वाइसराय भवन पर शान के साथ नहीं लहराता।"

नेताजी भारत से बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से गये। पुलिस उन पर बड़ी कड़ी नज़र रखती परन्तु वह उसकी नज़र से बच निकले। उनकी जर्मनी, रोम तथा टोकियो जाने की कहानी रोमांचक जीवट, महान् साहस तथा दृढ़ संकल्प से ओत प्रोत है। नेताजी के शत्रुओं ने उन्हें जर्मनी और जापान की कठपुतली कहा, परन्तु उनके देशवासी जानते हैं कि उनका एकमात्र उद्देश्य भारत से ब्रिटिश साम्राज्यशाही का उन्मूलन और देश को स्वतंत्र करना था। वह ऐसे महापुरुष तथा देशभक्त थे जो किसी की कठपुतली हो ही नहीं सकते थे। आज़ाद हिन्द फौज के भारत कूच के समय उन्होंने अपने अनुचरों से जो शब्द कहे थे वे अब भी कानों में गूंजते से हैं। उन्होंने कहा था,—"उन पर्वतों के उस पार, उन नदियों के उस पार हमारी भूमि है, वह भूमि जहां हम पैदा हुए हैं, जहां हम शीघ्र ही वापस पहुंचेंगे। सुनो, भारत पुकार रहा है। भाई भाई के लिये पुकार रहा है। आपका कूच दिल्ली मार्ग पर—विजय मार्ग पर आरम्भ हो रहा है। इस मार्ग पर मैं आपको भूख, प्यास, कष्ट और अन्त में मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ देने का वचन नहीं देता। यदि आप सब इसके लिये तैयार हों तभी मेरे साथ चलिये और हम साथ साथ विजय पथ पर आगे बढ़ेंगे।"

नेताजी सुभाषचन्द्र बसु असाधारण ओज और माधुर्य के मिश्रण थे। उनका गत्यात्मक तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व था जो लाखों जनता को उनके नेतृत्व में अनुपम साहस तथा वीरता के कार्य करने के लिये प्रेरित करता था। छोटे लोग भी जब उनकी झलक पाते तथा बातें सुनते तो उनमें पूर्ण विकास हो जाता था। वे अपनी पूर्ण आंतरिक शक्ति अनुभव करने लगते थे। उनकी उपस्थिति में स्वार्थी लोग भी उदार तथा कायर भी वीर बन जाते थे। उनकी लज्जालु और सरल मुस्कान, उनकी माधुर्य भरी दृष्टि बड़ी मनमोहक थी तथा उसका स्त्री-पुरुषों के हृदयों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। वे उनके सहज ही प्रशंसक और अनुचर बन जाते। वह उन्हें गौरवशाली कार्य करने के लिये प्रेरित करते। वह महान् नेता, असाधारण देशभक्त और भारत के एक महान् सपूत थे।





जे० बी० कृपालानी

आचार्य कृपालानी

भारतीय राजनैतिक और बौद्धिक क्षेत्र में आचार्य जीवतराम भगवानदास कृपालानी एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन की ओर दृष्टि उठते ही अटक जाती है। कारण यह नहीं है कि उनका सौन्दर्य आंखों को बरबस थाम लेनेवाला है, वरन् उनके मुख पर अंकित चिह्न दृढ़-निश्चय और प्रचुर साहस प्रकट करते हैं। कृपालानी एक दुबले पतले, नुकीले मुखवाले व्यक्ति हैं। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि किसी बुभुक्षित अराजकत्व की परिचायक है। उनके रूक्ष हास्य और मार्मिक भाषा का सद्यः प्रभाव कुछ तीक्ष्णता लिए रहता है। एक अवज्ञापूर्ण दृष्टि और दो सूत्र वचनों से तुषारपात करने की उनकी शक्ति का परिचय जिनको भी हुआ है वे उन क्षणों के अनुभव को जीवन भर नहीं भुला सकते।

कहा जाता है कि किसी भी व्यक्ति का सबसे उत्तम परिचय उसकी साधारणतम क्षणों में की हुई बातचीत है। कृपालानी की जिह्वा में जिस सरस्वती का निवास है, उसके कारण उनका कोई भी वचन साधारण नहीं कहा जा सकता। मीमांसा, वक्रोक्ति और व्यंग का कुछ ऐसा सम्मिश्रण उनके बोलने में रहता है कि सामान्य बातों में भी लोगों को कटूक्ति की गंध मिलती है। उनके ये सब बाह्य आवरण उन गुणों को छिपाये रहते हैं जिनको पारखियों ने पहिचाना है और जिनके कारण आज वह राष्ट्र के निर्माताओं में हैं।

कृपालानी का जन्म सिन्ध के एक भद्र परिवार में सन् १८८८ में हुआ। उनके भाइयों में से एक संन्यासी हो गया, एक गुप्त राजनीतिक दल में सम्मिलित हो गया और प्रसिद्ध 'रेशमी रूमाल षड़यंत्र' में विख्यात हो गया। अपने कार्यों के सिलसिले में

उसको भारत से बाहर जाना पड़ा और तुर्की में उसकी मृत्यु हो गई।

कृपालानी जन्मजात विद्रोही हैं। एक बार जब वह महाविद्यालय में छात्र थे, एक अध्यापक, डाक्टर जेक्सन ने कहा,—"तुम भारतीय झूठे हो।" इस कथन से कृपालानी के देशाभिमान को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने छात्रों को संघटित कर उस अध्यापक को पाठ सिखा दिया। बाद में कृपालानी और उनके साथियों को वह महाविद्यालय छोड़ना पड़ा।

अपने विद्यार्थी जीवन ही में राजनैतिक चेतना जागरूक रखने के कारण उनपर लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द का बड़ा प्रभाव पड़ा। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण उन्हें कराची के सिंध महाविद्यालय और बम्बई के विल्सन महाविद्यालय से निकाला गया।

कई महाविद्यालयों की मेजें खुरचने के बाद कृपालानी बिहार के एक महाविद्यालय में अध्यापक हो गये। गांधीजी उस समय चम्पारन सत्याग्रह आन्दोलन चला रहे थे। कृपालानी और राजेन्द्र बाबू दोनों उस समय गांधीजी के साथ हो लिये। पकड़े जानेवाले सत्याग्रहियों में सर्व प्रथम रहने का श्रेय कृपालानी को प्राप्त हुआ। तब से आज तक कृपालानी गांधीवादी हैं। गांधीवादकी व्याख्या करने में वह अद्वितीय हैं।

अपने गांधीवादी होने पर कृपालानी को गर्व है। उन्होंने गांधीवाद को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और परखा है। एक बार उन्होंने कहा कि "मैं गांधीवाद का बहुत सतर्क होकर विश्लेषण करता हूं। पर फिर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर, मैं बापू को सदा सही पाता हूं। तब मैं और कर ही क्या सकता हूं, सिवाय इसके कि उनका अनुगमन करूं? यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अन्यतम प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं हूं। दूसरा उत्तम मार्ग जो मेरे लिए रह गया है वह यह है कि किसी अन्यतम प्रतिभावान व्यक्ति का अनुसरण करूं। और यदि ऐसा न करूं तो मैं दोनों तरफ से डूबा!"

जब सन् १९१८ में महामना पंडित मदनमोहन मालवीय कांग्रेस के

अध्यक्ष निर्वाचित हुए तो कृपालानी उनके सहकारी बने। सन् १६१६में उनको काशी विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्यापक नियुक्त किया गया। पर सत्याग्रह आन्दोलन के शुरू होते ही वह उसमें कूद पड़े।

जेल से मुक्त होने पर आचार्य नरेन्द्रदेव, बाबू श्रीप्रकाश आदि के साथ कृपालानी ने काशी विद्यापीठ का संघटन किया। उन्होंने वहां पैर जमाये ही थे कि गांधीजी ने उन्हें साबरमती में विद्यापीठ का कार्य संभालनेके लिए बुला भेजा। यहीं उन्हें आचार्य उपाधि से सम्बोधित किया जाने लगा। प्रांतीय कांग्रेस के अधिकारियों से विद्यापीठ के शासन के विषय में उनकी खटपट हुई तो उन्होंने अध्यक्ष पद से पद त्याग कर दिया और रचनात्मक कार्य करने के लिए संयुक्तप्रांत (उत्तर प्रदेश) चले आये।

यह अधिकतर पूछा जाता है कि क्या कृपालानी में संगठन करने की क्षमता है? इन व्यक्तियों को गांधी आश्रमों की ओर नज़र डालनी पड़ेगी। इसके विषय में लिखते हुए राजेन्द्र बाबू ने लिखा था, "यह आश्रमों के संगठन और उनके कार्य में ही है कि नवयुवकों को अनुप्राणित करने की और उनको रचनात्मक कार्यों में लगा देने की उनकी महान प्रतिभा ने पहले पहल लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।"

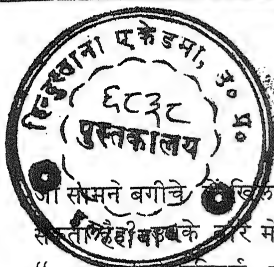
कृपालानी अनेक वर्षों तक कांग्रेस महासमिति के सदस्य और प्रधान मंत्री रहे। वह काम लेने में कड़े हैं। अपने अधीनस्थ लोगों को उन्नति की पूरी सुविधा देते हैं, परन्तु निठल्ले लोगों के दिल में आतंक पैदा करते हैं। उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में शायद ही किसी को कभी दंडित किया हो। यद्यपि थे वह कांग्रेस के प्रधानमंत्री, किन्तु कार्यालय के सभी लोग उनसे डरते थे। वे यह जानते थे कि कार्य में किसी प्रकार की उपेक्षा और असावधानी को कृपालानी कभी सहन न करेंगे।

कृपालानी कांग्रेस के ५४वें अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि कांग्रेस उनकी दृष्टि से गांधीजी के सिद्धांतों से दूर होती जा रही है तो उन्होंने अध्यक्ष पद त्याग दिया।

उन्होंने किसान मजदूर प्रजा पार्टीकी स्थापना की । सन् १९५१के आम चुनाव के बाद समाजवादी दल का उक्त दल में विलयन हो गया । कृपालानी नये प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष चुने गये ।

वक्ता कृपालानी और लेखक कृपालानी दोनों ही में मौलिक विचार और स्फूर्तिमान अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है । बुद्धिवादियों की परिधि के अन्दर उनके ग्रंथ, 'दि गांधियन वे' (गांधीवादी पथ), 'पोलिटिक्स आफ चर्खा' (चरखे की राजनीति), 'नॉनवायलेंट रिवोल्यूशन' (अहिंसक क्रांति) गम्भीर अध्ययनकी सामग्री समझे जाते हैं ।

कृपालानी स्वयं केवल चुनी हुई पुस्तकें पढ़ते हैं । गीता, बाइबिल और सिंध के सूफी कवि शाह अब्दुल लतीफ का वह प्रायः मनन करते रहते हैं । इससे उनकी उस धार्मिकता का पता चलता है जिसका आजकल की दुनिया में प्रदर्शन करना उपहासास्पद समझा जाता है । कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने कहा था कि अपने बड़े भाई की तरह मेरी भी संन्यासी बन जाने की इच्छा होती है । पर बंग कन्या सुचिता देवी के साथ उनके विवाह ने उनके जीवन में नयी धारा ला दी है । धार्मिकता, राजनीति और प्रेम के संगम, उनके व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का समागम कर दिया है । इसी कारण उनका अभ्यांतर उतना नीरस और रूक्ष नहीं है जितना कि बाह्य दर्शन से प्रकट होता है । उनकी दृष्टि कठोर है, पर उनका हृदय बहुत मृदुल है । एक घटना उल्लेखनीय है । अगस्त १९४२ के प्रातः काल श्रीमती सुचिता देवी कांग्रेस महासमिति की प्रख्यात बैठक में सम्मिलित होने के लिए स्वराज्य भवन में सामान बांध रही थीं । पर कृपालानी निर्विकार भाव से बरामदे में इस तरह खड़े थे जैसे घर में कुछ काम ही न हो रहा हो । उन्हें देखकर सुचिता देवी बोलीं, "आप तो आज बम्बई जाते जैसे नहीं दीखते ।" कृपालानी ने तुरंत उत्तर दिया, "सुचिता, हम अवश्य जा रहे हैं और यह आशा नहीं है कि लम्बे अर्से तक यहां वापस आ सकेंगे । तुम मुझे कुछ क्षण शान्तिपूर्वक उन सुन्दर फूलों को क्यों नहीं देखने देती



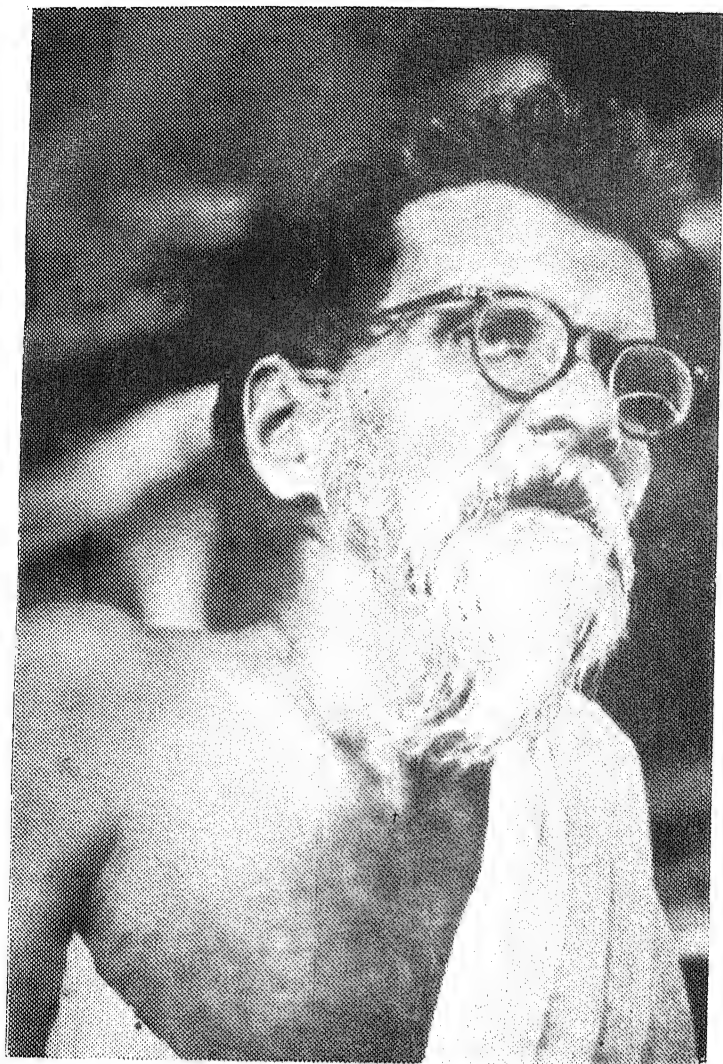
जो सामने बगीचे में खिल रहे हैं ?" क्या ऐसे व्यक्ति का हृदय कठोर हो सकता है? इनके बारे में स्वर्गीय श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा था, "हास्य व्यंग से परिपूर्ण, शक्ति और ओज से भरे हुए, एक तीव्र मेधा के वह ऐसे व्यक्ति हैं जो हमेशा उत्पीड़न करनेवाले तर्ज तरीकों और जीवन शून्य परम्पराओं के खिलाफ विद्रोही के रूप में खड़े होते हैं। वह स्वभाव से जोशीले, अधीर और अग्रगामी हैं, फिर भी भाई चारे के एक तनिक से प्रदर्शन पर भी वह कितने कृत कृत्य हो जाते हैं तथा अपने प्रति प्रकट किये गये प्रेम के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते हैं।"

कृपालानी विश्वासवान व्यक्ति हैं। यही विश्वास उन्हें संबल देता है। वह अपने विचारों की रक्षा के लिए सदैव कष्ट झेलने को तैयार रहते हैं। वह आवश्यकता पड़ने पर अपने उद्देश्यों और आदर्शों के लिए हँसते-हँसते फांसी का तख्ता चूम सकते हैं। ऐसे ही लोग अपने सहयोगियों के हृदयों में सम्मान और साहस पैदा कर सकते हैं।

विनोबा भावे

कर्मयोगी विनोबा भावे ने देश का ध्यान अपनी ओर खींच लिया है। आसपास के अंधकार में वह आशा की किरण हैं। किसान उन्हें अपने मुक्तिदाता के रूप में देखते हैं। जमींदार अपनी इच्छा से उनके अनुरोध को स्वीकार करते हैं। सरकार उनके भूदान यज्ञ को मान्यता प्रदान करती तथा इसमें अपना सहयोग देती है। प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक दल इस सद्-कार्य में उनका अनुगमन करते हैं और श्रद्धा प्रकट करते हैं। वह स्थान-स्थान की यात्रा करते हैं। उनके आसपास भारी भीड़ जमा हो जाती है। यह दयालु आत्मा अपनी निस्वार्थता से स्वार्थियों को लज्जित कर देती है। वह यह नहीं चाहते कि लोग दयावश गरीबों को भूमि दें। उनका तो यह विश्वास है कि हवा और पानी की तरह भूमि भी परमात्मा की निःशुल्क देन है तथा यह प्रत्येक जन को उसकी आवश्यकतानुसार मिलनी चाहिए। उन्होंने एक बार कहा था, "हवा और पानी की तरह भूमि परमात्मा की है। यह सोचना मूर्खता है कि यह सदैव एक ही वर्ग के लोगों की सम्पत्ति रहेगी। निःशुल्क भूमि देकर कृतकार्य होइए।"

विनोबा ने अपनी आत्मा को जीत लिया है। वह बाल ब्रह्मचारी हैं। किसी वस्तु से लोभित नहीं हो सकते। वह योगीवत् जीवन व्यतीत करते हैं और अहं को पूर्णतः विलोप करने में विश्वास करते हैं। गरीबों और अमीरों के समान रूप से हितैषी हैं। वह गांधीजी के सच्चे अनुयायी हैं और अहिंसा की ज्योति को ऐसे समय में प्रज्वलित रखे हुए हैं जब कि संसार में हिंसा की लपटें व्याप्त हो रही हैं। उनका भूदान यज्ञ एक महान प्रयोग तथा असाधारण आंदोलन है। इससे भले ही भूमि समस्या न सुलझ सके, परंतु देश में इस समस्या के संबंध में वातावरण की सृष्टि हो गई



विनोबा भावे

है। कुछ दिन पूर्व विनोबा ने इस आंदोलन का वर्णन निम्नलिखित अविस्मरणीय शब्दों में किया था—"यह भूदान यज्ञ जीवन को ही परिवर्तित करने का अहिंसात्मक प्रयोग है। मैं केवल सर्वकालीन परमात्मा का निमित्त मात्र हूं। मैं भी उन्हीं के समान निमित्तमात्र हूं जो दान देते हैं या लेते हैं। यह परमात्मा प्रेरित कार्य है। यदि ऐसा न होता तो लोग जो पग भर जमीन के लिए लड़ते हैं, निःशुल्क सैकड़ों एकड़ जमीन देने के लिए कैसे प्रेरित हो जाते ?"

विनोबा के बचपन के बारे में बहुत कम ज्ञात है। वह अपने माता-पिता की ज्येष्ठ संतान हैं। इस विद्वान, योगी, दार्शनिक, कवि और लेखक ने सदैव शुद्ध और सात्त्विक जीवन व्यतीत किया है। उन्होंने छोटी अवस्था में ही अपना घर त्याग दिया। अपने माता-पिता और दादा-दादी से उन्होंने अनेक गुण विरासत में पाए हैं। वे बड़े धार्मिक और सात्त्विकी थे। उनका विश्वास था कि सभी मानव परमात्मा की संतान हैं और मानवों में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके मंदिर सब के लिये खुले थे। उस समय के लिए यह असाधारण प्रगतिशीलता थी। उनके दादा शम्भूराव मूर्ति के सामने भजन गाने के लिए मुसलमान संगीतज्ञों को आमंत्रित किया करते थे। विनोबा बचपन से ही समाचार पत्रों को पढ़ने के बड़े शौकीन थे। उनके घर में अच्छा पुस्तकालय था। उन्होंने प्रारम्भिक अवस्था में ही धार्मिक साहित्य का गहरा अध्ययन किया। इस साहित्य का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह लगभग १८ भाषायें जानते हैं। एक बार उनकी माता ने उनसे कहा कि मैं संस्कृत में गीता को नहीं समझ सकती। क्या इसका मराठी में अनुवाद है ? इससे विनोबा को गीता को मराठी में अनूदित करने की प्रेरणा मिली। इस अनुवाद का मराठी साहित्य में उच्च स्थान है।

मैं विनोबा से गया के एक गांव में अप्रैल, सन् १९५४ में मिला था। निस्वार्थ सेवकों का एक दल उन्हें घेरे हुए था। वे किसी प्रभाव-

शाली संदेश से उत्प्रेरित थे । महान स्वप्नों में डूबे स्वप्न दृष्टा से मालूम पड़ते थे । उनका "बाबा" में पूर्ण विश्वास था । उन्हें विनोबा बाबा कहते थे । यह वातावरण पूर्णतः गांधीवादी था । इसे देखकर मुझे सेवाग्राम की कुटिया में गांधीजी से अपनी भेंट का स्मरण हो आया । विनोबा गांधीजी के सच्चे प्रतिरूप दिखाई पड़ते हैं ।

जब तक मैं उनके पास बैठा रहा तब तक मुझ पर उनके महान व्यक्तित्व का प्रेरणाप्रद प्रभाव पड़ता रहा । मैंने अनुभव किया कि विनोबा में गांधीजी के समान ही विनोदप्रियता है । उनकी मुस्कान से अन्य मुखड़ों पर भी मुस्कान फैलती है । जब वह हंसते या चुटकियों का आनंद लेते हैं तब उनका मुखड़ा भोला मालूम पड़ता है । मेरी ओर इशारा करते हुए उन्होंने पूछा, "क्या तुम्हारा नाम हमारे राजर्षि टंडनजी से बिलकुल मिलता है ?" मैंने कहा—"हां, पर मैं बिना दाढ़ी वाला हूं ।" इस पर वह दिल खोलकर हंसे ।

इन दिनों विनोबा कांग्रेस और अन्य संघटनों के उच्च कोटि के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं । उनके भूदान कार्यकर्त्ता और आश्रम हमें गांधीजी के दिनों की कांग्रेस की याद दिलाते हैं । महात्मा के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं ने जनता का विश्वास प्राप्त किया । ब्रिटिश सरकार सदैव यह जानती थी कि भले ही किसी भी आन्दोलन के लिए देश में उत्साह न हो पर महात्मा की अंगुली का इशारा पाते ही यह ठोस और प्रभावशाली गांधीवादी सेना मैदान में कूद पड़ेगी और सरकार के लिए समस्या उत्पन्न कर देगी । भूदान कार्यकर्त्ता भी हमें ऐसी ही आशा बंधाते हैं । हम उन पर और उनके नायक पर भरोसा कर सकते हैं ।

एक बार एक अमेरिकी ने विनोबा से अपने देश की जनता के लिए संदेश मांगा । विनोबा संकोच में पड़ गए । फिर उन्होंने कहा, "अमेरिका जैसे महान देश को संदेश देना मेरी धृष्टता होगी । पर मैं यह चाहूंगा कि

वे हमारे आन्दोलन को समझें। यह हमें बताता है कि सामाजिक दोषों को कैसे दूर करें।" फिर उन्होंने विनोदपूर्वक कहा कि "एक बार मैंने एक अमेरिकी आगन्तुक से कहा—'यदि तुम्हारे देश ने निःशस्त्रीकरण किया तो इससे वहां बड़ी बेकारी फैलेगी। फिर भी वे युद्ध पोतों का निर्माण जारी रख सकते हैं, पर उन्हें चाहिए कि उन्हें बड़े दिन के अवसर पर नष्ट कर दें'।"

गांधीजी की यह महानता थी कि वह नेताओं को प्रशिक्षित करते थे और मिट्टी से वीरों का निर्माण करते थे। विनोबा की महानता इस बात में है कि वह विनोबाओं का निर्माण कर रहे हैं जो उनके व्रत में विश्वास करते हैं तथा उनके संदेश को गांव-गांव में फैलायेंगे। उनकी कल्पना का ग्राम राज स्थापित करने के लिए कार्य करेंगे। उनके कार्य की प्रतिध्वनि छोटे और बड़ों सभी के दिलों में समान रूप से हो रही है।

विनोबा को गांधीजी ने खोजा। महात्मा ने अपने शिष्य के महान गुणों को अच्छी तरह अनुभव किया तथा उससे बहुत ही प्रभावित हुए। गांधीजी ने कई वर्ष पहले विनोबा को लिखा था—"मैं नहीं जानता कि तुम्हारे लिए किन विशेषणों का उपयोग करूं। तुम्हारे प्रेम और चरित्र की पवित्रता से मैं अत्यधिक प्रभावित हूं। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने में असमर्थ हूं।" विनोबा ने गांधीजी के विचारों को तभी स्वीकार किया है जब वह स्वयं उन से संतुष्ट हो गए हैं। बापू अनेक बातों में उनसे सलाह लेते थे। वह विनोबा को अहिंसा के विषय में अधिकारी विद्वान मानते थे। वह बड़े धार्मिक हैं तथा गीता, कुरान और बाइबिल के प्रकाण्ड विद्वान हैं। उनका धार्मिक व्यक्तियों पर—भले ही वे पारसी, पंडित या मौलवी हों—स्थायी प्रभाव पड़ता है।

भारतन कुमारप्पा ने लिखा है, "ऐसा लगता है मानो विनोबा हमारे देश की गहन आध्यात्मिकता और धार्मिक अनुभव के परिपक्व फल

हैं। इसी से अत्यंत भिन्न मतावलम्बी तक उन्हें सम्मानित करते हैं तथा उनकी बातें सुनते हैं। उनके साथ रहना तथा उन्हें निकट से समझना शिक्षाप्रद था।"

विनोबा ने बहुत कुछ अपनी माता राखूभाई से सीखा। माता ने उन्हें अनेक भक्तिपूर्ण भजन सिखाये तथा उनके मन में शास्त्रों के प्रति रुचि उत्पन्न की। उनकी मृत्यु के पूर्व सन् १९१८ में विनोबा गांधीजी के साथ हो गए। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में एक दिन उन्होंने अपने सब प्रमाण पत्र चूल्हे में जला डाले और कहा कि ये सब निरुपयोगी थे। यह देखकर उनकी माता को बड़ा आश्चर्य हुआ पर उन्होंने कुछ नहीं कहा। वह गांधीजी के साथ रहने लगे पर इसका उनके माता पिता को पता नहीं था। जब बापू को इस बात का पता चला तो उन्होंने इसे पसंद नहीं किया। उन्होंने विनोबा के माता-पिता को निम्नलिखित पत्र लिखा—"विनोबा मेरे साथ हैं। आपके पुत्र ने उसकी अवस्था को देखते हुए चरित्र की असाधारण उज्वलता और साधुता प्राप्त की है। मुझे इनकी उपलब्धि के लिए कई वर्षों तक कठोर आत्मसंयम करना पड़ा था।" कहा जाता है कि इस पत्र में गांधीजी ने वास्तविक नाम विनायक के स्थान में विनोबा लिखा था। तभी से सारा संसार उन्हें विनोबा के नाम से जानता है।

यद्यपि विनोबा कई आंदोलनों में भाग ले चुके थे तथा जेल जा चुके थे पर उनका नाम सन् १९४०में विख्यात हुआ। विनोबा का वर्णन गांधीजी से अच्छा कौन कर सकता है ? गांधीजी ने जब विनोबा को व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए प्रथम सत्याग्रही चुना तब उन्होंने उनके बारे में बताया कि "विनोबा कौन है तथा वह सब से पहले क्यों चुने गए ? विनोबा बी० ए० में पढ़ते थे पर उन्होंने सन् १९१५ में मेरे भारत आने पर कालेज छोड़ दिया। वह संस्कृत के विद्वान हैं। उन्होंने आश्रम के आरम्भिक दिनों में ही इसमें प्रवेश किया। वह इसके प्रथम सदस्यों में हैं। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन करने के लिए आश्रम से एक वर्ष की छुट्टी ली। एक वर्ष की समाप्ति के

बाद बिना कोई सूचना दिये वह फिर आश्रम में आगए। मैं यह भूल ही गया था कि वह उस दिन आनेवाले हैं। उन्होंने आश्रम की सभी श्रमिक प्रवृत्तियों में भाग लिया है तथा मैला साफ करने से लेकर रसोई पकाने तक का काम किया है। यद्यपि उनकी स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है तथा वह स्वभावतः विद्यार्थी हैं फिर भी वह अपना अधिकांश समय सूत कातने में लगाते हैं तथा इस कार्य में उन्होंने विशेषज्ञता प्राप्त करली है। उनका विश्वास है कि सर्वत्र सूत कातने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इससे गांवों की निर्धनता दूर होगी। वह जन्म जात शिक्षक हैं तथा उन्होंने आशा-देवी की हस्तकला के माध्यम से शिक्षा प्रणाली का विकास करने के कार्य में बड़ी सहायता की है। विनोबा ने सूत कताई को हस्तकला का आधार मानकर एक पाठ्य पुस्तक लिखी है। यह मौलिक चीज है। उन्होंने मज़ाक उड़ानेवालों को अनुभव करा दिया है कि कताई श्रेष्ठ हस्तकला है जिसका बुनियादी शिक्षा के लिए प्रभावशाली उपयोग किया जा सकता है। उन्होंने तकली की कताई में आमूल परिवर्त्तन कर दिया है तथा उसकी अभी तक अज्ञात सम्भावनाओं को प्रकट कर दिया है। ठीक कताई करने में भारत में कदाचित वह अद्वितीय हैं। उन्होंने अपने हृदय से अस्पृश्यता का सर्वथा निराकरण कर दिया है। वह साम्प्रदायिक एकता में मेरे समान ही विश्वास करते हैं। इस्लाम के तत्त्व को समझने के लिए उन्होंने कुरान के मूलरूप का अध्ययन करने में एक वर्ष लगाया। इसके लिए उन्हें अरबी पढ़नी पड़ी। उन्होंने अपने पड़ोस के मुसलमानों से जीवंत सम्पर्क बनाने के लिए यह अध्ययन आवश्यक समझा।

"उनके पास अपने शिष्यों और कार्यकर्त्ताओं की टोली है जो उनका निर्देश पाते ही कोई भी त्याग करने के लिए उठ खड़ी होगी।

"वह भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता की आवश्यकता में विश्वास करते हैं। वह इतिहास को सही-सही समझते हैं। पर उनका विश्वास है कि खादी पर केन्द्रित रचनात्मक कार्यक्रम के बिना गांवों की वास्तविक स्वतं-

त्रता संभव नहीं है। उनका विश्वास है कि चर्खा अहिंसा का उपयुक्त बाह्य चिह्न है। अहिंसा पिछले सत्याग्रह आंदोलनों का सक्रिय अंग हो गई है। वह राजनीतिक मंच पर कभी नहीं चमके। अपने अनेक सहकर्मियों के साथ वह विश्वास करते हैं कि सविनय भद्र अवज्ञा आंदोलन की पृष्ठभूमि में मूक रचनात्मक कार्य अति भीड़-भाड़ से भरे राजनीतिक मंच से कार्य करने की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। उनका पूर्ण विश्वास है कि रचनात्मक कार्य में हृदय से दृढ़ विश्वास किये बिना अहिंसात्मक प्रतिरोध असम्भव है। विनोबा कट्टर युद्ध-विरोधी हैं।"

विनोबा गांधीजी के नैतिक उत्तराधिकारी हैं। तेलंगाना में उनकी सफलता इतिहास के पन्नों की शोभा बढ़ायेगी। वह एक व्रत की पूर्ति के लिए कृत संकल्प हैं। हमें आशा है कि परमात्मा उन्हें आवश्यक शक्ति प्रदान करेगा। अपने उद्देश्यों के प्रति उनकी लगन और सत्यनिष्ठा से संतों को भी ईर्षा हो सकती है। वह प्रभावशाली वक्ता हैं और अपनी किसी बात को शायद ही दुहराते हैं। समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण चेतना प्रद होता है। गांधीजी का यह अद्वितीय और साधक शिष्य सदैव उच्च नैतिक स्तर पर रहता है। गांधीवादी लंगोटी और टालस्टाय जैसी दाढ़ीवाला यह योगी भूमिहीनों के लिए भूमि की खोज में जगह-जगह जा रहा है। उनका व्रत सफल और परमात्मा की इच्छा पूरी हो!





कस्तूरबा गांधी

कस्तूरबा गांधी

वह निरक्षर थीं। बाल विवाह की शिकार थीं। कट्टरपंथी परिवार की थीं। अपनी आरम्भिक अवस्था में उन्हें कदाचित ही इस बात का आभास हो कि वह ऐसे व्यक्ति की पत्नी हैं जो संसार का एक महानतम व्यक्ति और नायक होगा, जिसकी करोड़ों जनता प्रेम-पूर्वक आज्ञा पालन करेगी। जो कुछ भी उन्हें अपना थोड़ा प्रकाश प्राप्त था वह अपने पति के प्रकाश में लोप हो गया। यद्यपि उन्हें बड़ी सीमाओं के अंतर्गत काम करना पड़ा और बहुत सी मनुहारों का दमन करना पड़ा, फिर भी उनका जीवन विश्वास और तप की कहानी था। उन्होंने अपने को गांधीजी को समर्पित कर दिया था। पर एक तरह से उन्हें गांधीजी को खोना पड़ा। गांधी जी करोड़ों जनता के नायक हो गए। यह जनता उन्हें उनके पुत्रों, पत्नी या संबंधियों के समान ही अपना मानती थी। वह अपने प्रशंसक देशवासियों के "बापू" बन गए। उन्होंने भी इनमें तथा अपने सम्बन्धियों में कोई भेद नहीं किया। कस्तूरबा के जीवन में उनका सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी गांधीजी का जीवन-व्रत था। उन्हें इसके सामने झुकना पड़ा और उन्होंने गांधीजी के जीवन व्रत को अपना जीवन व्रत बना लिया।

उनके आदर्शों की पूर्ति को ही कस्तूरबा ने अपना कार्य बना लिया। अपनी सीमाओं के बावजूद उन्होंने गांधीजी के व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान किया। गांधीजी पश्चिमी देशों की जनता के लिए रहस्यमय पुरुष थे पर अपनी जनता के लिए कार्यशील पुरुष थे। यह जनता उनकी ओर शक्ति, प्रेरणा और नेतृत्व के लिए ताकती थी। अपने जीवन में कस्तूरबा के महत्त्व के विषय में गांधीजी

ने लिखा था—"उनमें एक गुण बड़ी मात्रा में था जो कुछ न कुछ रूप में अधिकांश हिन्दू पत्नियों में रहता है। वह गुण था—इच्छा या अनिच्छा से, जान या अनजान में वह मेरे पद-चिह्नों पर चलने में अपने को धन्य मानती थी। वह दृढ़ इच्छा शक्तिवाली महिला थी जिसे मैं आरम्भ में भूल से ढीठता समझता था। पर उस दृढ़ इच्छा शक्ति ने उन्हें अनजान में ही अहिंसात्मक असहयोग की कला और प्रयोग में मेरा गुरु बना दिया।"

महापुरुष की सच्ची पत्नी होना सरल कार्य नहीं है, विशेषतः ऐसे पुरुष की जो कष्टों को आत्म-शुद्धि का साधन समझे और जीवन की सुखद तथा अच्छी वस्तुओं का त्याग करे। कस्तूरबा सच्चे अर्थों में साध्वी पत्नी थीं। उन्हें अपने महान पति के अनुरूप अपने जीवन को बनाने में बहुत कष्ट भी झेलने पड़े। अपने वैवाहिक जीवन के आरम्भिक दिनों में उनमें अनेक संघर्ष हो जाते थे जिनसे दुखद परिस्थितियां पैदा हो जाती थीं। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में इनका उल्लेख किया है। धीरे धीरे दोनों ने एक दूसरे को समझा और सच्चे साथियों की तरह रहने लगे। कस्तूरबा और गांधी का जन्म पोरबंदर में सन् १८६६ में हुआ था। यह दुखकी बात है कि कस्तूरबा की सही जन्म तिथि अज्ञात है। पर उनके भाई श्री माधवदास के कथनानुसार उनका जन्म सन् १८६६ में हुआ था तथा वह गांधीजी से तीन या चार महीने छोटी थीं। उनका विवाह तेरह वर्षकी अल्प अवस्था में हो गया था। अपने विवाह के संबंध में गांधीजी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है—"मेरे लिए तो विवाह का अर्थ इससे भिन्न नहीं था कि अच्छे कपड़े पहिनने को मिलेंगे, बाजे बजेंगे, बरात निकलेगी, खूब दावतें होंगी और एक अपरिचित लड़की के साथ खेलने को मिलेगा। उस दिन मुझे सब कुछ ठीक, उचित और आनंदप्रद मालूम पड़ता था। विवाहित होने के लिए मेरी उत्सुकता भी थी।"

कस्तूरबा ने अपने पति के प्यारे और अपने उद्देश्यों के लिए

पति के साथ कष्ट उठाये। वह इसके लिए कोई भी त्याग करने को तैयार रहती थीं। अपने पति के द्वारा समय-समय पर उठाए गए असाधारण कदमों की राह में वह रोड़ा नहीं बनना चाहती थीं। सन् १९४२ में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने घोषित किया कि मैं शिवाजी पार्क में होनेवाली उस सभा में भाषण करूंगी जिस में गांधीजी भाषण करनेवाले थे। ९ अगस्त को पुलिस अधिकारी बिड़ला भवन में आ पहुंचे और उन्होंने पूछा कि क्या आप सभा में भाषण करेंगी। कस्तूरबा ने कहा—"हां"। इस पर वह तुरंत गिरफ्तार कर ली गईं। वह पूना के आग़ाखां महल में ले जाई गईं जहां गांधीजी नजरबंद थे। उस शान्त और मनहूस जगह में शांति पूर्वक महीने गुजरते गए। इस वातावरण का उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा और अंत में उनका निर्बल शरीर जवाब देने लगा। शिवरात्रि को उन्होंने हम सबसे सदैव के लिए विदा ली। उन दुखान्त परिस्थितियों में अपनी माता की मृत्यु पर श्री देवदास गांधी ने एक वक्तव्य में कहा, "शाही साज सामान और वातावरण उनकी प्रकृति के प्रतिकूल थे। कंटीली तार-बंदी और संतरियों के पहरे ने रही सही कमी को भी पूरा कर दिया। जब मैं जनता को यह बताता हूं कि वह "सेवा ग्राम की नीचे छप्पर की झोंपड़ियों में जाने के लिए लालायित थीं तो मैं अपनी प्रिय माता की स्मृति को कोई धक्का नहीं पहुंचाना चाहता।" अनिश्चित काल के लिए नज़रबंदी ने भी उनपर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव डाला तथा वहां के सभी वाह्य आराम उन्हें मानसिक और आध्यात्मिक शांति नहीं दे सके।

हम गांधीजी के आश्रमों के बारे में बहुत सुनते हैं पर उनमें कस्तूरबा के काम और प्रभाव के बारे में बहुत कम जानते हैं। दक्षिण अफ्रीका से सन् १९१५ में लौटने के बाद गांधीजी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। कस्तूरबा तुरंत उसकी सदस्या तथा कार्य संचालिका बन गईं। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इस आश्रम की सदस्या थीं।

उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में कस्तूरबा के बारे में लिखा—"वह विजय की घड़ियों में अपने पति के बाजू में उसी तरह सरल, शांत और सौम्य बैठी जिस तरह परीक्षा तथा दुख की घड़ियों में शान्त और निर्भय रहती थीं। मुझे उनके उस रूप का भी आभास मिलता है जब विदेशी भूमि में वह अपने नाजुक और पीड़ित एक हाथ से देश के सम्मान का दीप पकड़े थीं तथा दूसरे हाथ से घायल सैनिकों के लिए मोटे कपड़े तैयार करती थीं। दक्षिण अफ्रीका का महान् नेता जिसने श्री गोखले के शब्दों में मिट्टी से वीर तैयार किए, कुछ अस्वस्थ और थकित भूमि पर आराम से बैठा हुआ फलों और फलियों का साधारण भोजन कर रहा था और उसकी पत्नी इस तरह कार्यमग्न और संतुष्ट दिखाई पड़ती थी मानो वह विश्व विख्यात नायिका नहीं, जिसने अपने राष्ट्र के लिए हजारों कष्ट भोगे हैं, बल्कि सामान्य गृहणी है जो गृहकार्य की सैकड़ों छोटी-मोटी बातों में व्यस्त है।"

कस्तूरबा के सेवाग्राम में कार्य का वर्णन करते हुए श्रीमती इला सेन ने लिखा है,—"उनके बारे में बहुत कम सुनने में आता है, उनके बारे में बहुत कम लिखा जाता है, पर सेवाग्राम का जीवन उन्हीं से आवृत्त तथा उन्हीं के त्याग, अपरिमित धैर्य और सूझ-बूझ से प्रभावित है। वह महान् महिला हैं जिनमें भारत की सब से मूल्यवान् निधियां मूर्त-रूप हैं। राष्ट्र को उनकी देन उनके पति से कम नहीं है क्योंकि वह उस सब में उनकी मूक भागीदार रही हैं।"

कस्तूरबा ने अनेक सभाओं में भाषण नहीं किये। उन्होंने अधिक नहीं लिखा। कदाचित वह लिख भी नहीं सकती थीं। पर उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह स्मरण रहेगा। मार्च सन् १९३२ में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद उनका वक्तव्य राष्ट्र के लिए आह्वान था। यह लम्बा वक्तव्य था। इसमें उन्हों ने कहा था, "इलाज हमारे ही हाथ में है। यदि हम गिरे तो दोष हमारा ही होगा। अतएव मैं उन सब नर-नारियों से जिनके मन में मेरे तथा मेरे पति के प्रति आस्था है, अनुरोध करती हूं कि

वे मनोयोग-पूर्वक रचनात्मक कार्य-क्रम में जुटें तथा उसे सफल बनायें।"

उनके पुत्र हीरालाल ने धर्म परिवर्त्तन कर लिया था। उन्होंने उसे जो पत्र लिखा उससे उनकी वेदना प्रकट होती है। यह उल्लेखनीय पत्र है। इसका कुछ अंश यहां दिया जाता है। उन्होंने लिखा, "मैं नहीं जानती कि तुमने अपना प्राचीन धर्म क्यों बदला। यह तुम्हारी मर्जी की बात है। पर मैंने सुना है कि तुम भोले और अज्ञानी लोगों से अपना अनुगमन करने के लिए कहते फिरते हो। तुम अपनी सीमायें क्यों नहीं मानते? तुम धर्म के बारे में क्या जानते हो? तुम अपनी मनोदशा में क्या निर्णय कर सकते हो? लोग इस बात से गुमराह हो सकते हैं कि तुम अपने पिता की संतान हो। तुम धर्म प्रचार करने योग्य नहीं हो। मैं कहती हूं कि तुम ठहरो, विचार करो और अपनी मूर्खता से विमुख होओ। मुझे तुम्हारा धर्म परिवर्तन पसंद नहीं। पर जब मैंने तुम्हारा वक्तव्य पढ़ा कि तुम अपना सुधार करना चाहते हो तो मुझे तुम्हारे धर्म परिवर्तन से भी मन ही मन इस आशा से खुशी हुई कि तुम सात्त्विक जीवन आरम्भ करोगे।......"

हीरालाल के उन मुसलमान मित्रों के लिए जो उनके पुत्र की प्रवृत्तियों से अनुचित लाभ उठा रहे थे, लिखित पत्र में तीव्र प्रताड़ना थी। उन्होंने उन्हें लिखा, "मेरे पुत्र के तथाकथित धर्म परिवर्त्तन से उसका उद्धार होने के बजाय मैं देखती हूं कि इससे स्थिति और भी बिगड़ गई है। कुछ लोग तो उसे 'मौलवी' का पद देने की सीमा तक चले गये हैं। क्या यह उचित है? क्या तुम्हारा धर्म मेरे लड़के जैसे लोगों को 'मौलवी' कहलाने की अनुमति देता है.........पर एक दुखी मां की यह निर्बल पुकार कदाचित् उनकी अंतरात्मा को द्रवित करे जो तुम्हें प्रभावित कर सकते हैं। मैं तुमसे यह कहना अपना कर्त्तव्य समझती हूं जैसा मैं अपने पुत्र से कह रही हूं कि तुम परमात्मा की नज़रों में ठीक काम नहीं कर रहे हो।"

कस्तूरबा का देहांत हो गया। उनका भौतिक शरीर वर्षों का भार संभाल न सका और वह हमसे बिदा हो गईं। जिन परिस्थितियों में उनका देहांत हुआ उससे हमें अत्यंत दुख हुआ। वह सेवाग्राम की कुटिया में वापस जाने के लिए लालायित थीं। अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के बावजूद वह नज़रबंदी से मुक्त नहीं की गईं। वह मानवी आधारपर भी मुक्त नहीं की गईं। वह नज़रबंद शिविर में चल बसीं। भारत सरकार के अमेरिका स्थित एलची ने अमेरिका की जनता को प्रबुद्ध करने की उत्कट प्रेरणावश यह आश्चर्यजनक वक्तव्य दिया कि "भारत सरकार ने कस्तूरबा को रिहा करने का प्रस्ताव रखा था, पर यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ।" श्री देवदास गांधी ने इसका ज़ोरदार खंडन किया और इस पर आश्चर्य प्रकट किया।

कस्तूरबा का जिन परिस्थितियों में निधन हुआ उसे भूलना हमारे लिए संभव नहीं है। जब राजनीतिक संघर्ष की धूल बैठ गई होगी तब ब्रिटिश जनता का सिर शर्म से जरूर झुक गया होगा कि उनके लोगों ने भारत की सब से सम्माननीय वृद्ध महिला के साथ, जो संसार के एक महा-पुरुष की पत्नी थी, कैसा व्यवहार किया। इस विचार से बड़ा दुख होता है कि जो प्राणी किसी को किसी प्रकार भी नुकसान नहीं पहुंचा सकता था उसे सबसे शक्ति शाली साम्राज्य के बंदी के रूप में जीवन से हाथ धोना पड़ा। जब तक कस्तूरबा का नाम स्मरण रहेगा तब तक ब्रिटेन के इस अधम कार्य को भुलाया नहीं जा सकता।

कस्तूरबा के निस्वार्थ कार्य, उज्ज्वल विश्वास तथा अमर साहस ने संसार के नारीत्व पथ को आलोकित किया है। यशोधरा के समान कस्तूरबा अपने पति की इच्छाओं के प्रति सम्मान करना जानती थीं। उनकी उनके प्रति साधना अपने आप एक गौरव गाथा है। उनके निर्बल शरीर में दृढ़ इच्छा-शक्ति छिपी हुई थी। उन्हें ऐसे गत्यात्मक व्यक्तित्व की सेवा करने का गौरव प्राप्त था जिसने सत्य के प्रयोग किये। कस्तूरबा

भारतीय नारीत्व का सजीव प्रतीक तथा श्रेष्ठ आभूषण थीं। उनकी स्मृति हमारे हृदय-पटल पर अंकित है तथा वह हमें सदैव प्रेरित करेगी। वह श्रीमती नाइडू के शब्दों में मर्त्य से अमरत्व को प्राप्त हो गई हैं तथा उन्होंने भारत की प्रेय, गेय और ऐतिहासिक महिला-मंडली में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लिया है।



जयप्रकाश नारायण

वह अपने डिब्बे के एक कोने में शांत बैठे हुए थे। वह हाल ही जेल से रिहा किये गये थे और लाहौर फोर्ट की दुखद स्मृतियां उनके मस्तिष्क में उक्त समय भी विद्यमान थीं। उन्होंने ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए वीरता-पूर्ण संघर्ष किया। अनेक कष्ट झेले पर ब्रिटिश राज्य ज्यों का त्यों बना रहा। ऐसा जान पड़ता था कि वह गम्भीर मुद्रा में हैं और उनके चेहरे पर परेशानियां हैं। मैंने धीरे से उनसे कहा कि आप नेपाल, हज़ारीबाग जेल तथा अन्यत्र स्थानों पर किये गये अपने साहस-पूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालें। मैं यह जानने के लिए उत्सुक था कि सन् १९४२ में दीपावली के दिन वह किस प्रकार जेल से निकल भागे और गिरफ्तारी की हालत में नेपाल से बाहर चले गये? लाहौर फोर्ट में उन्हें कष्ट दिये गये। वह कहानी अभी अज्ञात थी। मैं उनके डिब्बे में चढ़ गया और रेलगाड़ी चल दी। मंद मुस्कान के साथ उन्होंने कहा, "आप उन दिनों का स्मरण दिलाने के लिए क्यों उत्सुक हैं? जो कुछ भी था वह खत्म हो गया और हमें उन बीती हुई बातों को भूल जाना चाहिये। हमें केवल इसी बात की चिन्ता है कि हम अब भी गुलाम हैं।" मैंने इस बात के लिए आग्रह किया कि वह उन घटनाओं के सम्बन्ध में विस्तार के साथ प्रकाश डालें। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। आपने सभी बातों का विस्तार के साथ वर्णन सुनाया और मैंने उसका विवरण अखबार में प्रकाशनार्थ भेज दिया। श्री जयप्रकाश से बातचीत करने में पहले कभी भी उतना आनन्द नहीं आया था जितना कि इस समय आया।

जयप्रकाश ही ऐसा साहसी, उत्साही व्यक्ति दीपावली के दिन जब



जयप्रकाश नारायण

कि अनेक मिट्टी के दीप प्रकाशमान थे, उस साम्राज्यशाही कठघरे—हज़ारीबाग जेल—से भागने में समर्थ हो सकता था। उस दिन अंधेरी रात थी। तारे आकाश में चमक रहे थे। उस रात के शान्तिपूर्ण वातावरण में जयप्रकाश, जोगेन्द्र शुक्ल, रामानन्दन मिश्र, सूरजनारायणसिंह, गुलाबचन्द्र गुप्त तथा शालिग्रामसिंह भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध में हिस्सा लेने, मुसीबतें झेलने एवं स्वतंत्र होने के ध्येय से जेल से निकल भागे।

जयप्रकाश अब भी युवक मालूम पड़ते हैं। आप में युवकों के समान उत्साह और वृद्धों के समान धैर्य है। आप जल्द ही घबड़ाते नहीं हैं। बहुत ही विनम्र स्वभाव के हैं। भूलों पर आप पश्चाताप नहीं करते। मित्रों एवं सहयोगियों के प्रति अधिक उदार हैं।

हज़ारीबाग जेल से भागने के पश्चात् जहां कहीं भी आप गये, आपने विद्रोहाग्नि भड़का दी। अपने सहयोगियों के सम्बन्ध में आप हमेशा पूछ-ताछ करते थे। आपने फरार देश भक्तों को सब प्रकार की सुलभ सहायता पहुंचाने का प्रयत्न किया। जयप्रकाश एक विद्रोही की भांति इधर-उधर घूमा करते थे। उन दिनों आपके सम्बन्ध में अनेक कथाएं प्रचलित थीं। आपके सम्बन्ध में विरहा एवं आल्हा भी लिखे गये। इनमें आपके कार्यों का वर्णन किया गया है। यदि गांधीजी "भारत छोड़ो" आन्दोलन के नेता थे तो जयप्रकाश एक वास्तविक विद्रोही थे।

जयप्रकाश नारायण सिद्धांतों में विश्वास करते हैं, परन्तु आप किसी भी सिद्धांत के कट्टर हामी नहीं हैं। आप दूसरे के विचारों को भी ध्यान से सुनते हैं। आपने जीवन का पर्याप्त अनुभव किया है, केवल सिद्धांतवादी ही नहीं। आप बातों को अच्छी तरह से परखते एवं तौलते हैं। किसानों और मज़दूरों की समस्याओं में गहरी रुचि रखते हैं। समता के अधिकार पर निर्मित समाज रचना के पक्षपाती हैं तथा ऐसी समाज रचना अपने जीवन-काल में स्थापित होते देखना चाहते हैं।

जयप्रकाश का जन्म बिहार जिले के सितावदिया गांव में ११

अक्तूबर सन् १९०३ में हुआ। आप अल्पावस्था में ही भारत को छोड़ कर अमेरिका चले गये। आपने अमेरिका में शिक्षा प्राप्त की। वहां करीब ८ वर्ष तक रहे। आपने पांच विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य किया। शिक्षा प्राप्त करने के समय जीविकोपार्जन के लिए आपने होटल कर्मचारी, वस्तुओं को बांधने वाले, मजदूर, विक्रेता तथा यंत्रकार (मेकेनिक) के रूप में काम किया। जयप्रकाश पहले गणित, भौतिक-शास्त्र एवं रसायन शास्त्र के छात्र थे, परन्तु बाद में आपने कई वर्षों तक जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र तथा समाज शास्त्र का अध्ययन किया। अमेरिका में भी आपने कुछ स्थानों पर ऐसे लोगों को देखा जो बहुत ही ग़रीबी से अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। इस विषमता को देख कर आपने यह अनुभव किया कि ऐसा कोई कारण नहीं कि कुछ को पर्याप्त मात्रा में चीजें उपलब्ध हों और किसी को मिले ही नहीं। आप सन् १९२९ में भारत आ गये। जयप्रकाश आराम का जीवन व्यतीत करने के लिए भारत नहीं लौटे, वरन् अपने साथियों की सेवा करने तथा कष्टों का जीवन व्यतीत करने के लिए आए। यहां भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के श्रम अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष बनाये गये। सन् १९३२ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय आप कांग्रेस के महा मंत्री भी रहे।

नासिक जेल से जयप्रकाश के जीवन में एक नये अध्याय का सूत्रपात है। वहां आपने अपने समाजवादी साथियों से कांग्रेस समाजवादी दल की योजना पर विचार विमर्श किया। कांग्रेस की निर्बलताओं के प्रति वह बहुत ही चिंतित थे। उन्होंने अनुभव किया कि संगठन को नयी नीति अपनानी चाहिये। नासिक जेल से रिहा किये जाने के बाद पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में अखिल भारतीय समाजवादी दल का प्रथम अधिवेशन हुआ। इसके पूर्व आपने सभी प्रदेशों में भ्रमण कर सभी प्रगतिशील विचार धारा वाले लोगों को कांग्रेस समाजवादी दल में सम्मिलित होने के लिए आह्वान किया। कांग्रेस

से मतभेद होने के कारण आपने उक्त संगठन से इस्तीफा दे दिया।

विलयन वार्त्ता के दौरान जयप्रकाश ने एक पक्के राजनीतिज्ञ का कार्य किया। आपने यह अनुभव किया कि राजनीतिक दलों को ग़लत रास्ते पर नहीं रहना चाहिये। उन दलों को ऐसे संगठनों में सम्मिलित हो जाना चाहिये जिनके उद्देश्यों से वे पर्याप्त सहमत हैं। पंचमढ़ी में यह निश्चित किया गया कि समाजवादी दल को किसान मज़दूर प्रजा पार्टी से विलय के सम्बन्ध में वार्त्ता प्रारम्भ करनी चाहिये। उक्त प्रयास सफल हुआ और नये दल की संयुक्त शक्ति कांग्रेस के लिए एक कड़ी चेतावनी है। प्रजा समाजवादी दल के उच्च नेतृमंडल में ऐसे राजनीतिक एवं प्रसिद्ध देश भक्त हैं जिन्होंने इस देश में स्वतंत्रता का बीज वपन किया है।

लेखक के रूप में जयप्रकाश की लेखनी में शक्ति है। आपकी भाषा सरल, सीधी और प्रभावशाली है। आप योग्यता के साथ अपने कथन को प्रस्तुत करते हैं तथा अपने पाठकों को समझाने की चेष्टा करते हैं। वह प्रसिद्ध वक्ता नहीं हैं पर सरल और परिचित शैली में इस तरह भाषण करते हैं मानों श्रोताओं से कमरे में बैठे मित्रों के समान बात चीत कर रहे हों। उनका मृदुल स्वर, नपे तुले तर्क, विषय पर अधिकार उन्हें अच्छा वक्ता बना देता है। उनका व्यक्तित्व मंत्र अनुरूप तथा प्रभावशाली है। वह अपने श्रोताओं में भावावेश नहीं उभाड़ते। वह तो उन्हें समझाने का यत्न करते हैं। उनके भाषण में तड़क भड़क और रंगीनियां नहीं होतीं। वह अपने श्रोताओं को अपनी ईमानदारी से प्रभावित करते हैं।

जयप्रकाश अत्यंत मानवीय विचारधारा वाले व्यक्ति हैं। उनकी पत्नी प्रभादेवी उनके लिए एक निधि के समान हैं। वह उनके लिए बहुत ही विचारशील एवं नम्र स्वभाव वाली हैं। वह आपके स्वास्थ्य के प्रति काफी सावधानी रखती हैं और आप के साथ उन स्थानों की भी यात्रा करती हैं जिनमें उनकी अपनी कोई रुचि नहीं है। यह सभी जानते

हैं कि प्रभादेवी जयप्रकाश के लिए कितनी सहायक हैं, पर यह बहुत ही कम लोगों को मालूम है कि जयप्रकाश प्रभादेवी की कितनी विचार-पूर्ण और कृपा-पूर्ण देख-रेख रखते हैं !

अक्सर देखा गया है कि जयप्रकाश में समय की नियमितता नहीं है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं में यह सामान्य दोष है। यदि वह बौद्धिक वार्त्ता या भाषण करने में लग जाते हैं तो दूसरे कार्य-क्रम को भूल जाते हैं। पर जब वह दूसरे कार्य-क्रम में विलम्ब से पहुंचते हैं तो अपने को अपराधी सा अनुभव करते हैं। एक दिन इलाहाबाद में वह एक सार्वजनिक सभा में भाषण करने के लिए देर से पहुंचे। उन्होंने अपने साथियों से कहा, "आप मेरा कार्य-क्रम इतना व्यस्त क्यों रखते हैं ? आखिर मैं भी मानव हूं। जब मैं किसी सभा में देरी से पहुंचता हूं तो मुझे दुख होता है। यहां मेरी प्रतिष्ठा तुम्हारे हाथों में है।"

जयप्रकाश राजनीतिक दलों की कुछ परम्पराओं को अंगीकृत नहीं करना चाहते। एक मार्क्सवादी अथवा एक वामपक्षीय को माला पहनाने, अभिनन्दन-पत्र तथा थैली भेंट करने आदि के प्रति यदि घृणा नहीं होती तो विमुखता अवश्य रहती है। इस प्रकार की चीजें कुछ वर्ष पूर्व आदर की प्रतीक जरूर थीं, परन्तु इन दिनों वे चापलूसी में शामिल हैं। अधिकतर मालायें तथा थैलियां इसलिये भेंट की जाती हैं कि उनसे आर्थिक स्वार्थ साधन किया जाय। मैं इस बात से अत्यधिक प्रभावित हुआ जब कि जयप्रकाश ने थैली भेंट करने के एक प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। उक्त आशय का प्रस्ताव उनकी ५०वीं जन्म-तिथि पर पेश किया गया था। आपने कहा कि "मैं सदैव दल का काम करता हूं और भविष्य में भी वही करता रहूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि इन परम्पराओं का, जो कहीं और प्रचलित हैं, हमारे दल द्वारा पालन किया जाय।"

यदि जयप्रकाश को नजदीक से देखें तो आपको यह नहीं मालूम होगा कि वह जन्म से ही क्रांतिकारी हैं। कहा जाता है कि लाहौर फोर्ट के

खुफिया विभाग के उच्च अफसरों को इस बात का अक्सर आश्चर्य होता था कि यह शांतिपूर्ण व्यक्ति संकटपूर्ण स्थितियों में क्रांतिकारियों का नेता था। जो लोग जयप्रकाश के भाषण को सुनेंगे उन्हें इस बात की कल्पना भी नहीं होगी कि वह छापामार युद्ध एवं क्रांतिकारी आन्दोलन का संगठन कर सकते हैं। वह मोहक व्यक्ति हैं जो मैत्रीपूर्ण व्यवहार और मुस्कान से आपका समर्थन प्राप्त कर लेंगे। परन्तु यदाकदा क्रांतिकारी की भृकुटि टेढ़ी हो जाती है जिससे बहुत से लोग भयभीत हो जाते हैं। जयप्रकाश का आदर एवं सम्मान न केवल उनके दल के कार्यकर्त्ता ही करते हैं, वरन् वे लोग भी करते हैं जिनका उनसे मतभेद है। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि नेहरूजी के बार बार प्रयत्न करने के बावजूद जब जयप्रकाश ने कांग्रेस छोड़ने का निश्चय किया तो नेहरूजी कितने दुखित हुए थे।

जयप्रकाश के विरुद्ध कम्यूनिस्ट काफ़ी प्रचार कर रहे हैं तथा उन्हें अमेरिका समर्थक कहते हैं। पर जयप्रकाश ऐसे देशभक्त तथा भद्र पुरुष हैं जो अपनी आत्मा और अपने देश को बड़े से बड़े राष्ट्र या व्यक्ति के हाथों कदापि नहीं बेच सकते। वह अमेरिका विरोधी या रूस विरोधी भी नहीं हैं। वह भारत को किसी भी राष्ट्र का पिछलग्गू बनने देना नहीं चाहते। वह चाहते हैं कि संसार के राष्ट्रों में भारत को ऊंचा स्थान प्राप्त हो। वह सत्ता या पद के भूखे नहीं हैं तथा अपने सिद्धांतों से कभी डिग नहीं सकते। हम जानते हैं कि उन्होंने कई बार सरकारी पद ग्रहण करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह सरकार की नीतियों से सहमत नहीं थे। उनसे कम दृढ़ व्यक्ति ने अपनी अंतरात्मा को संकुचित कर ऐसी स्थिति से लाभ उठा लिया होता। जयप्रकाश भारतीय राजनीतिक क्षितिज के जगमगाते सितारे हैं। भावी राष्ट्रनायक के रूप में राष्ट्र की दृष्टि उनकी ओर लगी रहती है।

कमला नेहरू

महापुरुषों की पत्नियों की अधिकतर अपने गृह में एक तरह की उपेक्षा रही है तथा बाहर उनके पतियों के प्रभावशाली व्यक्तित्वों के कारण उन्हें उचित सम्मान प्राप्त नहीं हुआ है। इन अज्ञात वीरांगनाओं के बारे में बहुत कम ज्ञात है जिन्होंने अपने पतियों की महानता में बहुत कुछ योगदान किया है। कमला नेहरू का जवाहरलाल की पत्नी के रूप में अपने देशवासियों के हृदयों में सदैव स्थान रहा। परन्तु अपने ही विशुद्ध गुणों के कारण उन्हें अपना यथायोग्य स्थान नहीं मिला। उन्होंने कभी भी अपने पति की प्रसिद्धि के प्रकाश में प्रकाशित नहीं होना चाहा। वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित थीं। अपने पति की अंध प्रशंसक नहीं थीं। उनका उनके प्रति आलोचनात्मक रुख था। वह जवाहरलाल की सफलताओं को न तो अतिरंजित करती थीं और न उनका मूल्य ह्रास ही करती थीं। उनमें आत्मश्लाघा थी तथा वह केवल पुछल्ला नहीं बनना चाहती थीं। जवाहरलाल ने लिखा है, "असाधारण आत्म गौरव और वेदना शीलता के कारण वह मेरे निकट सहायता मांगने के लिये नहीं आती थीं, यद्यपि मैं उन्हें अन्य किसी की अपेक्षा अधिक सहायता दे सकता था। वह राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना योगदान अपने ढंग से करना चाहती थीं और अपने पति का पुछल्ला और छाया मात्र नहीं बनना चाहती थीं। वह अपनी सार्थकता अपने तथा संसार के सामने प्रमाणित करना चाहती थीं। इससे अधिक मुझे किस बात से प्रसन्नता होती? पर मैं अपनी व्यस्तता के कारण सतह के नीचे नहीं झांक सका और यह न देख सका कि उसकी दृष्टि किस चीज पर है और उन्हें क्या वांछना है।"

उनका शरीर सुकुमार था परन्तु उनकी आत्मा दृढ़ थी। घातक



कमला नेहरू

अस्वस्थता के चंगुल में फंसने के बावजूद वह कभी निराश नहीं हुई। उनके मुखड़े पर सदैव आनन्दमयी मुसकान खेलती रहती थी। वह अपनी अस्वस्थता को अपने पति के लिये भार स्वरूप कदापि नहीं बनने देना चाहती थीं। उन्हें ऐसा कोई कार्य नहीं करने देना चाहती थीं जिससे उनके गौरव और उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगे। एक बार अपनी अस्वस्थता के दौरान में उन्होंने सुना कि जवाहरलाल सरकार को आश्वासन देकर जेल से मुक्त हो जायंगे। इससे वह बहुत उद्विग्न हुई और जब जवाहरलाल उन्हें देखने घर में पहुंचे तो उन्होंने कहा,–"यह मैंने क्या सुना है कि तुम सरकार को कोई आश्वासन देनेवाले हो ? ऐसा न करो।" इससे निश्चय ही उनके पति को बड़ी प्रसन्नता हुई होगी क्योंकि उनके हृदय में उनके प्रति बड़ा सम्मान है जो साहसी और वीर हैं तथा किसी कृपा के लिये किसी के सामने झुकते नहीं हैं। उन्होंने गम्भीर बीमारी के बावजूद कभी आशा नहीं खोई और सदैव भविष्य पर दृष्टि रखी। शारीरिक कष्टों के होते हुए भी वह प्रसन्नमुख थीं। उनकी आंखों में तीक्ष्ण ज्योति थी। मृत्युकाल में भी वह निर्भय और शान्त थीं। साहित्यिक कलाकार उनके पति ने इस वीरांगना के बारे में लिखा है––"अपनी गम्भीर अवस्था के बावजूद वह भविष्य में आशा लगाये हुए थीं। उनकी आंखों में आभा और तीक्षणता थी। मुखड़ा सामान्यतः प्रसन्न रहता था। मैंने उनसे वही ग्रहण किया जो उन्होंने मुझे प्रदान किया। इसके बदले मैंने उसे इन वर्षों में क्या दिया ? स्पष्टतः मैं असफल रहा और संभवतः उस पर उन दिनों की गहरी छाप पड़ी।

"स्कूल में सामान्य शिक्षा ग्रहण करने के अतिरिक्त उन्हें कोई विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी। उनका मस्तिष्क शैक्षिक विधियों से प्रभावित नहीं हुआ था। वह सरल लड़की की तरह हमारे बीच आई। उसमें ऐसे कोई रंग-ढंग नहीं थे जो आज कल अधिकतर देखे जाते हैं। उसके मुखड़े पर कैशोर्य सदैव खेलता रहा, पर जब वह अपनी पूर्ण अवस्था

को प्राप्त हुई तब उसकी आंखों में गहराई और तेज बढ़ गया। उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि इन प्रशान्त कुंडों के पीछे तूफान मचल रहा है। वह आधुनिक रमणियों के समान आदतों वाली तथा असंतुलित आधुनिक रमणी नहीं थीं। परन्तु उसने सरलता से आधुनिक जीवन ग्रहण कर लिया था। वह मूलतः भारतीय कन्या और विशेषतः कश्मीरी कन्या, संवेदनाशील और गौरवशील, बाल्य तुल्य और प्रौढ़, नासमझ और समझ-दार थी। वह अपरिचितों से खिंची रहती थी पर परिचितों तथा जिन्हें वह चाहती थी उनके सामने बड़ी स्पष्टवादी और खुश मिज़ाज थी। वह बहुत जल्दी निर्णय करती थी। यद्यपि ये निर्णय सदैव उचित तथा सही नहीं होते थे, फिर भी वह अपने स्वभाव जन्य पसंदगियों और नापसंदगियों से अडिग रहती थी। उसमें बनावटीपन नहीं था। यदि वह किसी को नापसंद करती थी तो यह स्पष्ट मालूम पड़ जाता था तथा वह इस बात को छिपाने का यत्न नहीं करती थी। यदि वह ऐसा प्रयत्न करती भी तो कदाचित् वह इसमें सफल न होती। मैं ऐसे बहुत कम लोगों को जानता हूं जिनकी ईमानदारी की छाप मुझ पर उसके समान पड़ी है।"

कमला नेहरू को सदैव नेताओं और साथियों का विश्वास प्राप्त था। वह परिश्रमशील तथा सफल संगठनकर्त्री थी। इलाहाबाद के गरीबों के लिये अस्पताल बनवाने के लिये वह बहुत उत्सुक थीं। उन दिनों स्वराज भवन के कांग्रेस अस्पताल का संचालन मुख्यतः वही करती थीं। उन्होंने उसके लिये धन संग्रह करने के लिये देश भर में दौरा किया था। वह अपने मित्रों से कहा करती थीं, "कृपया मेरे अस्पताल के लिये धन संग्रह करिये।" जब वह अपनी चिकित्सा के लिये भारत छोड़ कर विदेश जा रही थीं तब उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया था कि एक बड़ा अस्प-ताल बनवाइये जहां गरीब अपनी चिकित्सा करा सकें। गांधीजी ने उनकी इच्छा की पूर्ति की। कमला नेहरू अस्पताल का शिलान्यास करते हुए महात्मा ने कहा, "वह (कमला) स्वास्थ्य लाभ के लिये यूरोप जा

रही थीं। यह यात्रा मृत्यु की खोज में यात्रा प्रमाणित हुई। जब वह (स्विट्ज़रलेंड) जा रही थी तब उसने मुझसे कहा कि यदि उसका यूरोप में देहांत हो जाय तो मैं स्वराज भवन में जवाहरलाल द्वारा आरम्भ किये गये तथा उसके (कमला) परिश्रम से संचालित अस्पताल को स्थायी रूप प्रदान करने का यत्न करूं। मैंने उससे कहा था कि मैं इसका शक्ति-भर यत्न करूंगा।"

कमला नेहरू स्मारक अस्पताल श्रीमती सरोजिनी नायडू के शब्दों में निजी दुख और व्यक्तिगत शोक का स्मारक ही नहीं, वरन् उस आत्मा के प्रति राष्ट्रीय सम्मान का भी सूचक है जिसने अपने अल्प-कालीन जीवन में गिरते हुए स्वास्थ्य और शारीरिक कष्टों के बावजूद राष्ट्रीय संग्राम में साहसपूर्वक और निकट रूप से भाग लिया तथा भार-तीय स्वतंत्रता के उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी भी प्रकार की सेवा और त्याग करने की तत्परता दिखाई।

कमला नेहरू में अपना व्यक्तित्व था। उसका अभाव उनके साथी और सहकर्मी करते हैं। जिन्हें उनके साथ कार्य करने का अवसर मिला वे कहते हैं कि उनकी उपस्थिति मात्र प्रेरणाप्रद थी और ऐसा लगता था मानो दया की बहिन ही उनके साथ हो। उन्होंने अपने सहयोगियों की कठिनाइयां समझने का सदैव यत्न किया तथा उनकी व्यक्तिगत समस्यायें तक सुलझाने में गहरी रुचि ली। वह बड़ी साहसी, सत्यवादी और व्यवहार में सीधी और साफ थीं। उनके इन गुणों के कारण गांधीजी उनको बहुत चाहते थे तथा उनकी प्रशंसा करते थे। वह भारतीय नारी जागरण की मूर्ति थीं तथा सेवा कार्य में जुटी रहती थीं। एक बार वह अपने पति के साथ हैदराबाद गईं तथा वहां पर्दानशीन औरतों की एक सभा में उन्होंने भाषण किया। इसका उन औरतों पर बड़ा असर पड़ा। कुछ दिन बाद हैदराबाद के कई लोगों ने शिकायत की कि उनकी औरतों के रुख में पतियों के प्रति उग्र परिवर्त्तन के लिये कमला नेहरू ज़िम्मेदार हैं।

कमला नेहरू का जन्म १ अगस्त सन् १८९९ को हुआ था। वह श्री जवाहरलाल कौल की पुत्री थीं। उनका जवाहरलाल नेहरू से ६ फरवरी सन् १९१६ को विवाह हुआ। विवाह के समय उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। २८ फरवरी सन् १९३६ को उनका स्विट्ज़रलेंड में देहावसान हो गया। इस अवसर पर जवाहरलाल नेहरू और उनकी पुत्री इंदिरा उनके पास थीं। कमला नेहरू की मृत्यु पर रवीन्द्रनाथ टाकुर ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को एक समुद्री तार भेजा जिसमें उन्होंने लिखा—"उसने अपने जीवन और मरण में आप की वीरता को अपनाया। वह उसी वीरता की अमर ज्योति के रूप में जीवित है।"

कमला नेहरू और जवाहरलाल साथ साथ अधिक समय व्यतीत नहीं कर सके। देश में जवाहरलाल की सेवाओं की मांग थी और वह एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करते थे। कमला नेहरू रोग आक्रांत हो गईं तथा उन्हें चिकित्सा के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान जाना पड़ा। इसका रोगग्रस्त महिला पर असर पड़ा। वह एकाकी और निराश हो जाती होंगी परन्तु वह बड़ी समझदार थीं। वह जानती थीं कि उनके पति एक पुण्य कार्य में रत हैं तथा देश के लिये प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। वह उन पर अज्ञात रूप से प्रभाव डालती थीं। आरम्भ में जवाहरलाल ने इसका पूर्ण महत्त्व अनुभव नहीं किया। परन्तु बाद में उन्होंने अनुभव किया कि वह उन पर यथा योग्य ध्यान नहीं दे रहे हैं। "भारत की खोज" में उन्होंने लिखा है—"मेरा पिछला जीवन मेरे सामने खुलता जा रहा था और कमला सदैव मेरे पास खड़ी थी। वह भारतीय नारी या नारीत्व का ही चिह्न बन गई थी। कभी कभी वह हमारे प्यारे भारत के सम्बन्ध में मेरे विचारों से अजीब ढंग से घुल मिल जाती थी। अपनी कमज़ोरियों और त्रुटियों के बावजूद वह समझ में नहीं आती थी तथा रहस्य-पूर्ण थी। कमला क्या थी? क्या मैं उसे जानता था? उसकी आत्मा को समझता था? क्या वह मुझे जानती और समझती थी?

क्योंकि स्वयं मैं भी रहस्य तथा अज्ञात गहराइयों का असाधारण व्यक्ति हूं जिसे खुद नहीं नाप सका।"

उनका शरीर टूटे हुए फूल के समान था पर उनकी देशभक्ति-पूर्ण भावना की महक मादक थी। वह स्वर्णिम ज्योति पुंज का दीपक थीं। पीड़ित मानवता के लिये उनके हृदय में अपार सहानुभूति थी। वह ज़रूरतमंदों के प्रति दयालु थीं तथा उनकी यथाशक्ति सहायता करती थीं। वह भारतीय नव नारीत्व की प्रतिनिधि थीं, पर प्राचीन मूल्योंसे अवगत थीं तथा उनका दृढ़ता और विवेक पूर्वक निर्वाह करती थीं। वह कई दृष्टियों से असाधारण महिला थीं। आज जब हम उनका बड़ा अभाव अनुभव करते हैं तो हमारे मुख से ये शब्द निकल पड़ते हैं——

"मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि तुम चली गईं। तुमने धरती से प्यार किया, तुम्हारी आंखों में आभा थी जो तुम्हारी मुस्कान में लहराती थी। वह मुस्कान जो मृत्यु को गीत, कविता या नाटक समझती है। तुम्हारा तो नित नूतन जन्म होता है तथा नये रूप में वैभव को अचरज में डालती हो। अरे ! क्या देहांत होने पर ऐसा यौवन, ऐसा प्रेम और हुलसित रहने के लिये ऐसी वासना कभी मृत हो सकती है ?"

कमलाजी का जीवन दीपक की उज्ज्वल ज्योति के समान था। यह कम्पित होती थी, प्रज्वलित होती थी, प्रगाढ़ होती थी और सदैव दीपक के तल में स्थित तेल का उपयोग करते हुए शुष्क भी होती थी। इसमें विद्युत का दिखावटीपन नहीं था। इसमें गैस के प्रकाश की नीर-सता नहीं थी। यह सजीव, निर्बन्ध और स्वतंत्र ज्योति थी। एक दिन एकाएक तेल पूर्णतः समाप्त हो गया, ज्योति झलमला उठी तथा वर्षा के आंसुओं से विगलित रात्रि का आभास देती हुई बुझ गई।

कमलाजी में बनावटीपन बिलकुल नहीं था। उनमें कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं थी। मूक और सच्ची सेवा करना ही उनका जीवन व्रत



वल्लभभाई पटेल

वल्लभभाई पटेल

'भारत के लौह पुरुष' सरदार वल्लभभाई पटेल को समझने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि आपका उनसे निकट परिचय होता। आपको केवल उनके चेहरे पर ध्यान देना था। उनके चौड़े जबड़े, दृढ़ मुद्रा और वेधक आंखें आप पर रोब जमा देतीं। वह देर तक वाद-विवाद नहीं करते थे; अधिक समझाते भी नहीं थे। वह लोगों की बातें सुनते थे, निर्णय करते थे और उसे कार्यान्वित करते थे। उनका दृढ़ मुख, गालों की ऊँची हड्डियां और जबड़े की दृढ़ रेखायें यह प्रकट करती थीं कि वह वाक्वीर नहीं, वरन् कर्मवीर थे। उनकी भारी पलकों से कुछ झँपी आंखें किंचित गोपनीयता इंगित करती थीं। वह ऐसे पुरुष थे जो कोई दुराव नहीं रखते थे। यदि कोई कुछ क्षण उनकी ओर देखता तो उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी उपस्थिति से जनता में विश्वास तथा शक्ति बढ़ती थी। कार्य-शीलता उनके चेहरे पर अंकित थी। उनके चेहरे पर लेनिन और तिलक के मिश्रित चेहरों की छाप सी दिखाई पड़ती थी। उस पर विद्रोह और असमझौता-वादी वृत्ति स्पष्ट अंकित थी। आप यह तुरंत अनुभव कर सकते थे कि संकटकाल में उनके साहसपूर्ण नेतृत्व पर भरोसा किया जा सकता था।

अगस्त सन् १९४२ में जब बम्बई में ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पर विचार हो रहा था तब मैंने पटेल को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आग उगलते, व्यंग वाण छोड़ते और घृणा व्यक्त करते हुए देखा। मेरी बग़ल में पत्रकारों की पंक्ति में कुछ विदेशी संवाददाता भी बैठे थे जो इस देश के लिए नये थे। वे श्रोताओं द्वारा पटेल के भाषण पर की

गई गगनभेदी हर्ष-ध्वनि पर आश्चर्य चकित थे। उनमें से एक ने पूछा—"लोग इतने जोरों की करतल-ध्वनि क्यों कर रहे हैं ? क्या यह श्री गांधी हैं ?" विदेशी संवाददाता को बताया गया कि यह गांधी नहीं, पटेल हैं। "क्या यह वही पटेल हैं जो कांग्रेस दल के निर्मम सूत्रधार हैं और जिनको जान गन्थर ने जिम फार्ले से तुलना की है ?" "हां, वही," मैंने कहा।

पटेल कठोर दलीय सूत्रधार और दृढ़ संकल्पशील संघटनकर्त्ता के रूप में विख्यात थे। उनके नाम से ही देश और विदेश में दृढ़ता और निर्ममता का बोध होता था। इससे वह कुछ अलोकप्रिय हो गये थे क्योंकि अनुशासन अधिकांश लोगों के लिए असुविधाजनक होता है। जब के० एफ० नरीमेन और एन० बी० खरे के विरुद्ध अनुशासन की काररवाई की गई तथा सरदार ने सुभाषचन्द्र बसु का विरोध किया तब उनकी (सरदार की) अलोक-प्रियता चरम सीमा पर पहुंच गई थी। उस समय यदि मतदान लिया गया होता तो पटेल भारत के सबसे अवांछनीय व्यक्ति घोषित होते। सौभाग्य या दुर्भाग्य से कांग्रेस कार्य समिति के ऐसे सब निर्णय के लिए जो अनुचित समझे जाते थे, सरदार ही दोषी ठहराये जाते थे।

सरदार के कठोर और रुक्ष बाह्य आवरण से ऐसा लगता कि वह हृदयहीन थे। पर इस कठोर पुरुष का, जो कार्य लेना जानता था तथा कठोरता से कार्य करता था, अभ्यंतर बड़ा कोमल था। वह बड़े दयावान् थे और कभी कभी बड़े कोमल हृदय का परिचय देते थे। उनके मित्रों का कहना है कि उनसे सच्चे मित्र और विश्वसनीय साथी का मिलना कठिन था।

उस दूषित दृष्टिवाले और भ्रष्ट बिवर्ले निकल्स ने एक बार लिखा था, "पटेल के बारे में पश्चिम के उदार समाचार पत्रों में अधिकतर समाचार नहीं छपते। कांग्रेस के सूचना प्रकाशन विशेषज्ञ ऐसा इन्तजाम

करते हैं जिससे ऐसा ही होता है ।" यदि निकल्स ने सत्य की शोध करने का यत्न किया होता तो उसे ज्ञात हो गया होता कि पटेल को पश्चिम के समाचार पत्रों में प्रकाशन प्राप्त न होने का कारण कांग्रेस नहीं, वरन् स्वयं पटेल थे जो देश में फुदकनेवाले विदेशी पत्रकारों को अपने पास नहीं फटकने देते थे । बिवर्ले निकल्स ने कहीं सरदार को कांग्रेस का भयंकर जल्लाद भी कहा था। हां, वह जिन लोगों से घृणा करते थे उनके लिए भयंकर जल्लाद थे । भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के सभी शत्रुओं के लिए वह भयंकर प्रतीत होते थे । अहमदनगर के क़िले से मुक्त होने के बाद अपने स्वभाव के अनुसार खरे वक्तव्य में उन्होंने कहा कि यदि भारत में कोई फांसी की सज़ा के लायक़ है तो वह लार्ड लिनलिथगो है, जो बंगाल के अकाल के लिए ज़िम्मेवार है । सन् १९४२ के आन्दोलन में भाग लेनेवाले देशभक्त सर्वथा निर्दोष हैं ।

सरदार पटेल का जन्म ३१ अक्तूबर सन् १८७५ में गुजरात के खेड़ा ज़िले में हुआ । उनके पिता ने सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। वल्लभभाई अपने बाल्य-काल में अपने शिक्षकों तथा दूसरों के लिए सिरदर्द बने रहते थे। उनकी विद्रोही भावना का दमन करना कठिन था। वह भावना क्रियाशीलता के लिए छटपटाती रहती थी। सरदार इंग्लैंड गये तथा वहां से बैरिस्टर बनकर लौटे। उनकी वकालत अच्छी चलती थी । न्यायाधीशों तथा सह-कर्मियों का सम्मान प्राप्त था। वह गांधीजी के सम्पर्क में सन् १९१६ में आये । तब से उन्होंने गांधीजी का अनुगमन पूर्णतः, एक प्रकार से अंधानुकरण किया, क्योंकि उन्हें उनकी भूल-शून्य निर्णय-शक्ति में पूर्ण विश्वास था । गांधीजी को भी सरदार की उनके प्रति आस्था और संघ-टन-शक्ति में पूर्ण विश्वास था। सरदार ने जब सन् १९२८ में ऐतिहा-सिक बारदोली सत्याग्रह का सफल नेतृत्व किया तब उनकी प्रसिद्धि शीर्ष-बिन्दु पर थी । पंडित नेहरू के शब्दों में "यह संघर्ष ऐसी वीरता

के साथ चलाया गया कि शेष भारत ने इसकी प्रशंसा की। बारदोली के किसानों को काफ़ी सफलता मिली। इस आन्दोलन की वास्तविक सफलता इस बात में थी कि इसने देशभर के किसानों को प्रभावित किया। बारदोली भारतीय जनता की आशा, शक्ति और विजय का चिह्न तथा प्रतीक बन गया।"

सरदार पटेल सन् १९३१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह जीवन के अंतिम क्षणों तक देश के सब से शक्तिशाली नेताओं में थे। सरदार का प्रभावशाली व्यक्तित्व था, पर उनसे भी प्रभावशाली उनकी साधनाशील पुत्री मणिबेन हैं जो उन पर भी प्रभाव जमाये रहती थीं। आगुन्तकों के लिए उतने आतंककारी सरदार नहीं थे जितनी मणिबेन थीं। सरदार अपनी पुत्री पर अगाध स्नेह रखते थे। पुत्री ही उनके लिए साथी, मित्र और निजी सचिव थी। इस बात से सरदार के एक पत्र का स्मरण हो आता है जो उन्होंने अहमदनगर के क़िले से मणिबेन को लिखा था। इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि "अब समय आ गया है जब तुम्हें अपना स्नेह और अपनी साधना किसी अन्य पर अर्पित करने के लिए तैयार होना चाहिये; क्योंकि मैं वृद्ध हो चला हूं, स्वास्थ्य गिर रहा है तथा मैं किसी भी दिन इस संसार से चल बसूं।"

गांधीजी के हृदय में सरदार के प्रति बड़ा आदर था, उन्हें पुत्रवत् प्यार करते थे। वह सरदार की सबल सामान्य बुद्धि से प्रभावित थे। गांधीजी ने एक बार उनकी प्रशंसा में लिखा था, "सरदार वल्लभभाई पटेल की संगति में आना मेरे लिये बड़ा सुयोग था। मैं उनकी अनुपम वीरता से अवगत था, पर मुझे उनके साथ रहने का ऐसा अवसर नहीं मिला था जैसा इन १६ महीनों में मिला। मुझ पर वह जैसा स्नेह रखते थे, उससे मुझे अपनी मां का स्नेह स्मरण हो आता था। मुझे उनके मातृयोचित गुणों का भान ही नहीं था। यदि मुझे कुछ भी हो जाता

तो वह फिर स्वयं आराम न करते। मेरी सुविधाओं का बारीकी के साथ खुद इंतज़ाम करते।"

सरदार अपने शत्रुओं के लिए आतंक तथा मित्रों के लिए सहारा थे। इस महान् सेनानी ने अपनी जनता की नितांत सचाई और ईमानदारी से सेवा की। यह शक्तिशाली नेता अपने देशवासियों के लिए शक्ति स्तंभ था। वह कभी डिगा नहीं, झुका नहीं। वह अपने मन को अच्छी तरह जानते थे और समयानुसार तथा विधि अनुसार कार्य करना जानते थे। जब वह बहुत अस्वस्थ थे तब भी अपने उच्च और भारी दायित्वों से घबड़ाते नहीं थे। जब वह पूर्ण विश्राम और चिकित्सा के लिए बम्बई पहुंचाये गये तब भी अपने साथ कुछ महत्वपूर्ण काग़ज़-पत्र (फायलें) काम के लिए साथ लेते आये। बम्बई में उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और १५ दिसम्बर सन् १९५० को उन्होंने अंतिम सांस ली। भारत ने अपने एक शक्तिशाली निर्माता के निधन का शोक मनाया। उन्होंने भारतीय रियासतों का भारत में विलयन कर जिस नवभारत का निर्माण किया वह कार्य इतिहास के पन्नों की सदैव शोभा बढ़ायेगा। भावी पीढ़ियां देश के प्रति उनकी सेवाओं के लिए उन्हें सदैव स्मरण करेंगी।



श्रीमती सरोजिनी नायडू

भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में एक अत्यन्त सजीव स्फूर्तिमयी तथा आकर्षक मूर्ति श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं। वह सन् १९२५ में राष्ट्रपति (कांग्रेसाध्यक्ष) थीं, हालांकि हिन्दी व्याकरण के अनुसार उनको राष्ट्रपति न होकर राष्ट्रनेत्री होना चाहिए था। कई वर्षों तक कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की सदस्या थीं। जीवन की इस अप्रत्याशित सफलता का रहस्य उनकी वाग्वैदग्ध्य मिश्रित कुशाग्रता तथा योग्यता थी। वह कुछ चापल्य से अनुमोदित मानवता की जीवित प्रतिमा थीं। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की वह एकमात्र सदस्या थीं जिन्होंने कभी-कभी गांधी जी के प्रति सप्रेम असम्मान दर्शाया; महात्माजी को उन्होंने 'भारत का नन्हा मिकी माउस' कहा (मिकी माउस अंग्रेजी सिनेमा का एक हँसोड़ चरित्र है, जिसका शरीर चूहे जैसा है और वह अपनी करतूतों से कई छकाने वाले कार्य करता है)। जार्ज स्लोकोम्ब ने लिखा था, "वह औरतों में सबसे अधिक ख़तरनाक और प्रतिभाशाली, परिहासमयी मुखर औरत श्रीमती सरोजिनी नायडू ! वह कोई राजनैतिक कट्टरपन्थी नहीं हैं। सांवली, मुंहफट और मुस्कुराती हुई, प्रशंसनीय रसोई करने वाली, एक प्रसन्न हँसोड़ साथी, एक ठंडे आलोचक दिमाग़ वाली, वह एक ऐसी पलेथन हैं जो कभी-कभी गांधीजी के ऊपर गूंथे हुए प्रशंसा तथा नायक पूजा के आटे को हल्का कर देती हैं। वह महात्माजी के छोटे से दरबार की मान्यताप्राप्त हुई विदूषिका हैं। भारतीय क्रेमलेन की राडेक और भारतीय क्रांति के जिरोन्डिनों में मैदाम रोलेन्ड हैं !"

श्रीमती सरोजिनी नायडू न केवल एक नेत्री और कवियित्री थीं बल्कि वह स्वयं एक संस्था थीं। जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनकी प्रखर



सरोजिनी नायडू

बुद्धि, गहरी मानवीय भावना और सहृदयता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। आधुनिक भारत की वह एक सीमा-चिह्न थीं और भारतीय इतिहास की एक युगनिर्मात्री थीं। वह कवियित्री, देशभक्त, राजनीतिज्ञ, सुभाषिणी, सुगृहिणी कारागामिनी पक्षी, हृदय मेत्री, जन प्रेरणादायिनी, महागीत गायिका, वृहत्स्वप्न दर्शिका, लयकारिणी, तार्किक, सुषुप्त राष्ट्र की उद्बोधिनी, लाखों व्यक्तियों की आदर्श वह एक आदमी से अधिक हिम्मतवाली होते हुए सर्वांगीण नारी थीं। वह राजनीति, कविता तथा साड़ी की रूपरेखा, जिस विषय में आप बहस करना चाहें उसे आपके साथ उसी सहूलियत के साथ कर सकती थीं। मित्रों के साथ गप्प करने की ओर उनकी रुचि, देश की स्वतंत्रता के प्रति प्रेम से थोड़ा ही कम थी। वह वीरांगना थीं, पर अतुलित मानवी भी थीं।

सरोजिनी देवी नेहरू परिवार में बड़ी बहिन के समान थीं। जब जी चाहता वह जवाहरलाल नेहरू के साथ आत्मीयतापूर्वक वार्तालाप करना शुरू कर देती थीं और उनके गुस्से को कुछ चुटकियां लेकर ठंडा कर देती थीं। एक दिन कई युवतियां नेहरूजी का भाषण सुनने गईं। भाषण के बाद श्रीमती नायडू ने कहा "जवाहर ऐसा न सोचना कि वे सब युवतियां जो तुम्हारे भाषण सुनने आती हैं, समाजवादी हो गई हैं। वे केवल तुम्हारा सुंदर मुखड़ा देखने आती हैं।" जब तक वह आनंद भवन में रहती थीं तब तक पूरे मकान पर अपना इस तरह आधिपत्य प्रकट करती थीं, जिसकी नकल नहीं की जा सकती। मुझे याद है कि श्रीरणजीत पंडित के अवसान के बाद श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित को सरोजिनी देवी से कितना अधिक आश्वासन मिला था। श्रीमती नायडू उस समय दिल्ली में थीं, पर वह अपनी पुत्री पद्‌मजा नायडू को साथ लेकर फौरन इलाहाबाद चली आईं। स्टेशन पर रेल से उतर कर श्रीमती नायडू धीरे धीरे दो एक आदमियों की मदद से उस कार पर चढ़ीं जो उनको श्रीमती पंडित के घर ले गई। उनके पहुंचते ही श्रीमती पंडित को बड़ी सान्त्वना मिली

और बहुत ढाढस बंधा । श्रीमती पंडित को गले से लगाकर सरोजिनी देवी बोलीं, "स्वरूप धीरज रक्खो, मैं इस समय तुम्हारी नैसर्गिक हिम्मत को देखना चाहती हूं । अपने दिल को टूटा हुआ मत समझो । प्यारा रणजीत हमेशा हमारे साथ रहेगा ।"

श्रीमती नायडू कई बार जेल गई थीं और उन्होंने हमेशा जेल के जीवन को प्राकृतिक सरलता के साथ बिताया । देश की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने बहुत कुछ सहा और त्याग किया । सन् १९४२ में उनकी सबसे बड़ी परीक्षा हुई जब कि उनको आगा खां महल में महात्मा गांधी, कस्तूरबा और महादेव देसाई के साथ बंद कर दिया गया था । यह मशहूर है कि सरोजिनी देवी महात्मा गांधी की बड़ी सतर्कता के साथ देख रेख करती थीं और उनकी सहूलियत और आराम का ध्यान रखती थीं । जब वह आगा खां महल से छोड़ दी गईं तो एक दिन आनंद भवन के बरामदे में ध्यानावस्थित सी अकेली बैठी हुई थीं । मैं धीरे धीरे उनके पास गया और वह बोलीं, "तो तुम आ गए ! बोलो क्या चाहते हो ? जल्दी बोलो और फिर मुझे अकेला छोड़ दो ।" मैंने उनसे कहा कि "देश यह विवरण जानने के लिए उत्सुक है कि महादेव देसाई का अवसान आगाखां महल में कैसी परिस्थिति में हुआ । बड़ी कृपा होगी, यदि इस किस्से को मुझे सुना दें ! " मैंने उनसे यह भी कहा कि मैं आपके साथ यात्रा करने को प्रस्तुत हूं । वह राजी हो गईं और मैं उनके साथ यात्रा पर चला । कानपुर के पास उन्होंने मुझे सुनाया कि महादेव भाई एक शीशे में अपना मुंह देख रहे थे कि अकस्मात् धम से जमीन पर गिर पड़े । फौरन यह पता चला कि महादेव इस संसार में नहीं रहे । महात्मा गांधी अपने प्रिय शिष्य को देखने के लिए आए । उन्होंने पुकारा—"महादेव ! महादेव ! !" पर शिष्य की वाणी मौन थी और गुरु के आह्वान का प्रत्युत्तर न मिलने का यह प्रथम अवसर था । श्रीमती नायडू ने बतलाया कि बापू ने कांपते हुए हाथों से महादेव को शीतल जल से नहलाया । वह अतीव शोकजन्य दृश्य

था। जब मैंने इस करुण कथानक को लोगों तक पहुंचाया तो जनता हिल उठी और सरकार श्रीमती नायडू के इस कथा को बताने के कारण कुछ चिढ़ गई। श्रीमती नायडू ने पत्रकारों से कुछ और गंभीर बातें कह दीं और दिक्कतें ढाने लगीं। उनको आज्ञा मिली कि पत्रकारों से न मिलें और उनके भाषणों तथा वक्तव्यों पर जो रोक लगा दी गई उससे पता चलता है कि साम्राज्यवादी तानाशाह उनके भाषणों से कितना घबराते थे। वे समझते थे कि इनसे जनता फिर विद्रोह के लिए भड़क उठेगी।

भाषण देते समय श्रीमती नायडू श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर देती थीं। उनके शब्द-चित्र साकार, भाषा शुद्ध तथा वाणी संगीतमय होती थी। वह सहस्रों मंचों की नायिका थीं और उनकी भाषण-प्रतिभा अनन्य थी। कई वर्ष पहले उन्होंने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के सिनेट हाल में विद्यार्थियों की सभा में भाषण किया था। सभा स्थल श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था तथा प्रसिद्ध वक्ता के भाषण की प्रतीक्षा कर रहा था। भाषण का विषय था "प्रहरी, प्रभात की खबर है?" उन्होंने ५० मिनट तक भाषण किया। उनका प्रत्येक वाक्य इसी लय से आरम्भ होता था—"प्रहरी, प्रभात की खबर है?" भाषण समाप्त होने पर कई दिनों तक छात्र श्रोताओं के ओंठों से शब्द सुनाई पड़ते थे—"प्रहरी, प्रभात की खबर है?" सन् १९२४ में उन्होंने पूर्व और दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों में यूनियन के निवासियों की तरफ से एक राजनैतिक कार्य करने के लिए दौरा किया। गोलमेज़ सभा के सिलसिले में जब वह लंदन गईं तो भारतीयों की स्वतंत्रता की मांग के बारे में उनको कई सभाओं में भाषण देने पड़े। इंग्लैंड से वह अमेरिका गईं। वहां जाकर उन्होंने एक दौरा भाषण देने के लिए किया और वहां की जनता को भारतीय दृष्टिकोण के उचित विवेचन से बहुत प्रभावित किया। इस प्रकार उन्होंने, कैथरिन मेयो के गन्दी पुस्तक "मदर इन्डिया" के लिखने से जो ज़हर फैल गया था, उसको बड़ी हद तक दूर किया। इस दौरे के विषय में वह कहती थीं—"ज्यों ही मेरा जहाज़

अमेरिका पहुंचा, मुझको अमेरिका के पत्रों के सम्वाददाताओं ने घेरा और पूछा, "आपकी कैथरिन मेयो के विषय में क्या राय है ?" मैंने कहा, "कैथरिन मेयो—यह किसका नाम है ? मेरे विचार में उसकी कब्र में अंकित करने के लिए यह सबसे अधिक उपयुक्त पंक्ति है ।" अमेरिका में अपने भाषणों में उन्होंने किसी कृपा की याचना नहीं की । वह किसी दया के लिए नहीं गिड़गिड़ाईं । उन्होंने केवल भारत के उद्देश्य को संसार के समक्ष प्रस्तुत किया । अमेरिकनों की एक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "हम पश्चिम के किसी भी तत्त्व से सहानुभूति की याचना नहीं करते । हमारा पश्चिम के किसी तत्त्व पर विश्वास नहीं है । हमारा इंग्लैंड के किसी तत्त्व सबसे अधिक उदार तत्त्व पर भी विश्वास नहीं है । इसका कारण सीधा और साफ है । ब्रिटिश उदारवादी, मजदूर दलीय या कट्टरपंथी कोई भी भारत से हाथ धोना सहन नहीं कर सकता । हम याचना की झोली लिए नहीं फिरते । हम अपनी ही शक्ति से खड़े हैं ।"

सन् १९४५ में उन्होंने दिल्ली में पत्रकारों को "भारत छोड़ो" प्रस्ताव के संबंध में भारत की स्थिति स्पष्ट की । कांग्रेस कार्यसमिति की वही एकमात्र सदस्या जेल के बाहर थीं तथा सभी उनकी ओर नेतृत्व तथा दिशा दर्शन के लिए ताक रहे थे । उस दिन श्रीमती नायडू अपने पूरे रूप में थीं । वह अपनी जनता पर किए गए सरकारी अत्याचारों से द्रवित तथा भारतीय जेलों में बंद हज़ारों देशवासियों की दशा से दुखित थीं । उन्होंने भारतीय और विदेशी पत्रकारों को ओजस्वी वाणी में कांग्रेस की स्थिति को समझाया । उनका भाषण असाधारण था तथा श्रोता उनकी राजनीतिकता से प्रभावित हुए । वह कुछ और विचलित थीं । उनका हृदय सात्त्विक कोप से भरा हुआ था । उन्होंने ब्रिटिश सरकार की तीव्र भर्त्सना की और कहा कि, "भारत ने नैतिक प्रश्नों पर अपना निर्णय किया है तथा कांग्रेस कार्यसमिति अपने निश्चय पर निश्चल रहेगी, चाहे इसका परिणाम कुछ ही क्यों न हो ।" उन्होंने ब्रिटिश सामाज्यशाहियों को

चुनौती दी कि वे नज़रबंद नेताओं पर खुली अदालत में मुकदमा चलाएं तथा यदि दम हो तो उनका अपराध प्रमाणित करें। इस पत्रकार सम्मेलन पर उनकी प्रतिभा का असाधारण प्रभाव पड़ा। अपनी वार्ता को समाप्त करते हुए उन्होंने विनोदपूर्वक कहा, "पत्रकारो, यदि मैं मर जाऊं तो तुम जनता से कहना कि श्रीमती नायडू पत्रकारों से बातें करते-करते चल बसीं।"

उनकी वाग्वैदग्धता के बाद दूसरा नम्बर उनके व्यंग का आता था। उनके साथ आपका एक क्षण भी अनाकर्षक नहीं हो सकता था। विश्व-विद्यालयों के आचार्य, राजनीतिज्ञगण, महाराजा, राजा, हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी सब कोई उनकी संगत में रहना पसंद करते और उनकी छटकती हुई गोष्ठी का रसास्वादन करना चाहते थे। अपनी पुस्तक 'इन्साइड एशिया' में जान गुन्थर ने उनकी विशेष तारीफ की है और एक रोचक किस्सा बताया है—

"श्रीमती नायडू के प्रभावशाली तथा अपने आलोक से चढ़ाई सी करने वाले व्यक्तित्व को कुछ पंक्ति-समूहों में कोई कैसे कैद कर सकता है? एशिया की एक महानतम महिला, श्रीमती नायडू एक कवियित्री, क्रांतिकारी, हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए दिल लगाकर काम करने वाली, कई भाषाओं में विषद भाषण देने वाली, एक राजनीतिज्ञ, एक सैनिक हैं। श्रीमती नायडू एक बहुत ही छा जाने वाली व्यक्ति हैं। किस्सा यह है कि एक बार पुलिस उनको पकड़ते हुए घबराती थी और वह एक थाने से दूसरे थाने में जा कर कहती थीं कि मुझे पकड़ो और जेल में डालो। पुलिस ने जब उनको जेल में भेज दिया तो फिर आज्ञाकारी सेवक की तरह पूछा कि हुक्म दीजिए अब क्या करें।"

सरोजिनी देवी फरवरी १३, सन् १८७९ को हैदराबाद दक्षिण में पैदा हुईं। उनके पिता अघोरनाथ चटर्जी उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल की एक विभूति थे। अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा उन्होंने अपने

प्रांत से दूर हैदराबाद में बिताया। सरोजिनी उनकी लाडली बच्ची थीं और उसको प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने आप दी। श्रीमती नायडू ने एक बार कहा कि पिता जी की देख रेख में मेरी शिक्षा वैज्ञानिक थी। उन्होंने यह इरादा कर रक्खा था कि मुझे या तो बड़ा वैज्ञानिक या संगीतज्ञ बनायेंगे। पर उनसे और अपनी मां से जो कवित्व की ओर रुझान मैंने पाया था वह काफ़ी दृढ़ निकला। एक बार जब मैं ११ बरस की थी तो एक गणित के प्रश्न के साथ सर मार रही थी। मेरी निराशा की सांसों के साथ सवाल का हल तो नहीं निकला, पर एक पूरी कविता निकल पड़ी। मैंने उसे लिखा। कहा जाता है कि इस घटना से उनको अपनी कवित्व शक्ति का प्रथम आभास मिला। यद्यपि उन्होंने अपनी कविता को अंग्रेज़ी भाषा में छंदोबद्ध किया है पर उनकी भावना वस्तुतः भारतीय है और उनमें एक अपना विशेष सौंदर्य और आकर्षण है। उनकी कविता की विशेषता, विचारों का प्राधान्य, संगीत का माधुर्य्य और भाषा के ऊपर अधिकार है। उनमें पूरे खिले हुए कमल की सी ताज़गी, मिठास और स्वाभाविकता है और सामुद्रिक पक्षियों का सा संगीत है। सरोजिनी देवी में कुछ प्राच्य जादू सा है। यदि वह भारतीय इतिहास के किसी दूसरे काल में पैदा हुई होतीं तो उनका संबंध सुमधुर कोमल कान्त पदावली से अधिक रहता और राजनीति के रुक्ष झटकों से कम। कल के भारत में इस तरह की प्रतिभा और भावनामयी मूर्ति जो अपने देश के दासत्व से अभिज्ञ हो, कल्पना के महलों में रहकर जीवनयापन नहीं कर सकती।

श्रीमती सरोजिनी नायडू की काव्य प्रतिभा की मान्यता देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी मिली है। उनकी कविता में जीवन और मानवीय भावना हिलोरें मारती रही हैं। उनकी कविताओं के संबंध में सर एडमंड गास ने लिखा है—"उनके गीतों में भारत की धरती के ही बोल हैं। यद्यपि वह अपने कवित्व की अभिव्यक्ति के लिए आंग्ल भाषा का उपयोग करती हैं, परंतु उनकी भावना का पश्चिम से कोई बंधन नहीं है।

उसमें उष्ण कटिबंधीय और आदि मानवीय भावनाओं की झलक है। मेरा विश्वास है कि यदि उनका इस दृष्टि से सावधानी पूर्वक और मनन-पूर्वक अध्ययन किया जाय तो उनसे पूर्व के धुंधले स्थलों पर उसी प्रकार प्रकाश पड़ेगा जिस प्रकार कोई विचारक या इतिहास डाल सकता है।" उनकी कविताओं में मानव हृदय के लिए महान आकर्षण है। उनके लिए स्पेंसर की ये पंक्तियां युक्तिसंगत ठहरती हैं——

"उनके शब्द मधु धार के समान थे, जो मधु के छत्ते से धीरे-धीरे प्रवाहित होती है। उनमें सुननें वाले के हृदय को अज्ञात ही द्रवित करने तथा मृत पुरुष को भी जीवित करने की शक्ति है।"

सौन्दर्य के प्रति प्रेम ने उन्हें कवियित्री तथा मानवता के उत्पीड़न के प्रति सहानूभूति ने उन्हें राजनीतिक बना दिया। उन्होंने लिखा——

> "अरे भाग्य तूने मुझे कष्टों की चक्की में अनाज के दाने के समान पीस डाला है। पर देख मैं उसे अपने आंसुओं से गीला कर और गूंथकर आशा की रोटी उन्हें आराम देने और खिलाने के लिए तैयार करूंगी जिनके अगणित हृदयों के लिए कष्टों की झाड़ी के अतिरिक्त और कोई फसल लहराती ही नहीं है।"

यह उत्तर प्रदेश का महान सौभाग्य था कि ऐसी प्रशस्त, विज्ञ तथा गुणवन्ती भारतीय ललना ने राज्यपाल के पद पर आसीन होकर स्वतंत्रता के प्रथम प्रकम्प के बाद राज्य के भाग्य का संचालन किया। अफसरों तथा मंत्रियों में वह बहुत प्रिय रहीं और अपने कार्यों को पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक बनाया। लखनऊ का राज्य भवन इस महान महिला के अट्टहास से गूंजा और संध्या समय बड़े-बड़े दरबार लगे, जहां गरीब, अमीर, हिन्दू, मुसलिम, कवि, राजनीतिज्ञ, अफसर सभी इकट्ठा होकर श्रीमती नायडू के सजीव हास परिहास का रस लेते थे। यह शोक की बात है कि वह उत्तर प्रदेश में अल्प काल के लिए रहीं। बहुत ही स्वल्प समय के बाद यह मधुर पक्षी पिंजड़े से उड़ गया और छोड़ गया एक स्मृति तथा मीठी झंकार।



राजगोपालाचारी

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के राजनीतिक जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हमें यह पूर्णतया ज्ञात हो जायगा कि जीवन में सफलता और असफलता को विभाजित करने वाली लकीर बहुत पतली होती है। सन् १९४१ से लेकर सन् १९४६ तक राजाजी भारत के राजनीतिक क्षेत्र में सबसे अधिक अप्रिय व्यक्तियों में से थे। यह कल्पना करना कठिन था कि उनका ऊपर आना फिर कभी संभव हो सकेगा और वे अपने देशवासियों का समर्थन प्राप्त कर सकेंगे। सन् १९४२ में वह अपने अनेक सहकारियों द्वारा कोसे गए तथा उनकी वक्तृता उनके सहकारियों तथा दूसरे कांग्रेस जनों को तीर की तरह बेधती थी। उनके ऊपर जले पर नमक छिड़कने का आरोप लगाया गया। जितना अधिक वह मुसलिम लीग को मनाने तथा अंग्रेज़ों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे उतना ही अधिक उनके साथियों को खलता था। उनका नाम जनता के लिए एक दुःस्वप्न के समान हो गया तथा वे अलोकप्रियता की ऊंची चोटी पर पहुंच गए थे। मुझे स्मरण है कि जब नैनी सेंट्रल जेल में चोरी से आए हुए समाचार पत्र से राजाजी के संबंध में कुछ समाचार पढ़ सुनाने का मैंने प्रयत्न किया तो एक नेता ने मुझे मना कर दिया था कि राजा जी के संबंध में मैं उन्हें कोई समाचार न दूं। राजाजी कई वर्ष तक अकेले स्वनिर्धारित मार्ग पर चलते रहे। इस अवधि के अंदर सभाओं में उनके भाषणों में रुकावट डाली जाती रही। समाचारपत्रों में उनकी बड़ी कटु आलोचना की गई तथा एक दो बार उनके ऊपर कीचड़ और तारकोल तक फेंका गया। इन तमाम बातों ने उनको निरुत्साहित नहीं किया और वह जनता के क्रोध का शान्ति से, अत्यन्त धैर्यपूर्वक सामना करते रहे।



सी० राजगोपालाचारी

सन् १९४१ में वह इलाहाबाद से होकर गुज़रे और मैंने रेलगाड़ी में उनसे भेंट की। मैंने उनको बताया कि उनके भाषणों और वक्तव्यों पर लोग बहुत क्षुब्ध हो रहे हैं। उन्होंने कहा, "इसका यह अर्थ नहीं है कि वे सही हैं और मैं ग़लत हूं। इससे केवल यह प्रकट होता है कि वे क्रुद्ध हैं और मैं नहीं हूं। क्रुद्ध व्यक्तियों का निर्णय इतना सही नहीं होता, जितना कि उन लोगों का जो कि क्रोध में नहीं हैं।" मैं तर्क को और आगे न बढ़ा सका और उनकी तरफ ग़ौर से ताकने लगा। वह पूर्णरूप से प्रसन्न तथा विश्वस्त दिखाई पड़ रहे थे।

भारत ने सन् १९४७ में अपने इतिहास में एक नया पृष्ठ खोला। पहली बार एक भारतीय भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। यह चुनाव कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था तथा सभी जगह पसंद किया गया। इस पद पर किसी लोक प्रिय नायक को प्रतिष्ठित नहीं किया गया। इसके लिए एक राजनीतिज्ञ की नियुक्ति हुई जिसकी परिपक्व बुद्धिमत्ता, तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि तथा व्यापक अनुभव का समय आने पर बड़ा उपयोग हो सका था। यह भारत तथा पाकिस्तान के पारस्परिक संबंधों की दृष्टि से अच्छा हुआ तथा भारत और ब्रिटेन के संबंधों की दृष्टि से भी वांछनीय था। वह उखड़ जाने या किसी की भभकी में आने वाले प्राणी नहीं हैं। बुद्धि में वह किसी से भी कम नहीं हैं तथा किसी वस्तु को उसकी अच्छाई और उपयोगिता के विषय में विश्वस्त हुए बिना, वह स्वीकार नहीं कर सकते।

'पैगम्बर का आदर अपने घर में नहीं होता' वाली कहावत यदि कभी भी सच थी, तो वह राजाजी के संबंध में ठीक उतरती है। मद्रास में वह अपने ही भाई बंधुओं के बीच निश्चित रूप से अप्रिय हैं तथा १९३७ के कुशल मुख्य मंत्रित्व के बावजूद संभवतः उनकी वहां आवश्यकता नहीं है। यहां तक कि कांग्रेस का उच्च नेता मंडल भी जनता को उन्हें इस बार अपना मुख्य मंत्री स्वीकार कर लेने के लिए राजी नहीं कर सका हालांकि उनकी योग्यता और अनुभव ने केन्द्रीय सरकार को उन्हें अपना गर्वनर-

जनरल चुनने के लिए प्रेरित किया था। वास्तव में यह एक आश्चर्य की बात है कि एक व्यक्ति अपनी आदतों में इतना सरल, देखने में इतना गम्भीर, अपने व्यक्तिगत संबंधों में इतना मनमोहक, स्वभाव से इतना त्यागी तथा विद्वत्ता में इतना महान् होते हुए भी जनता के कतिपय भागों में इतनी तीव्र दुर्भावना उत्पन्न कर सकता है। संभवतः उनको अच्छी तरह जानने वाले लोग उनके कठोर तर्क को सहन नहीं कर पाते तथा उनके मस्तिष्क की बारीकियों को पूर्णतया समझने में असमर्थ रहते हैं।

अधिकतर अवसरों पर हर एक से उनका मतभेद रहेगा तथा वह किसी का भी बौद्धिक आधिपत्य स्वीकार नहीं करेंगे यह भली भांति विदित है कि कुछ समय तक गांधीजी भी उनसे निराश हो गए थे किन्तु वह राजाजी को चाहते इतना थे तथा उनके इतने प्रशंसक थे कि उनसे छुटकारा पाना महात्माजी के लिए असंभव सा था।

वह एक व्यक्ति नहीं वरन् एक शैली हैं। तर्क ही उनका मुख्य आधार है, अपने अकाट्य तर्कों से वह अपने विपक्षियों को नीचा दिखा सकते हैं, तथा लोगों में विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं, किन्तु कार्य के लिए वह लोगों को उद्यत और अनुप्राणित नहीं कर सकते। उनकी ज़बान पर कथायें हर समय तैयार रहती हैं तथा त्रिपुरी में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर 'फूटी हुई नाव वाली' जो कहानी उन्होंने सुनाई थी वह अब तक हमारी स्मृति में मौजूद है। यह ब्राह्मण संत तर्क का एक प्रकांड पंडित है, उनकी बौद्धिक सूक्ष्मता अत्यन्त अपूर्व है। कठिन से कठिन तथा अत्यन्त जटिल समस्याओं के लिए उनके पास एक या दूसरा हल हमेशा तैयार रहता है। राजाजी की प्रशंसा करते हुए पंडित नेहरू ने अपनी जीवन कथा में लिखा है—"उनकी तीव्र मेधा, स्वार्थहीन चरित्र तथा विश्लेषण की अपूर्व शक्ति हमारे उद्देश्य के लिए बहुत उपयोगी रही हैं।"

राजाजी का काला चश्मा चर्चिल के सिगार और बाल्डविन के पाइप के समान उनके साथ अत्यन्त घनिष्ठता से संबंधित है। इस प्रकार वह

दूसरों की आंखों में देखते हैं, किन्तु दूसरा कोई एक आध अवसरों पर भी इस बात की तनिक भी जानकारी प्राप्त करने के लिए कि उनका मस्तिष्क किस ढंग पर कार्य कर रहा है, उनकी आंखों के अंदर नहीं देख सकता। उनके व्यक्तिगत चरित्र के आदर्श बहुत ऊंचे तथा वह अत्यन्त सरल एवम् साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। मद्रास के मुख्य मंत्री के पद पर होते हुए भी वह अपने कपड़े अपने आप धोया करते थे। पता नहीं कि गवर्नर-जनरल बन जाने पर भी वह अपनी इस आश्चर्यचकित कर देने वाली आदत को ज्यों का त्यों कायम रख सकें या नहीं। उन्होंने बहुत विस्तृत अध्ययन किया है तथा साहित्य की दुनिया के लिए उनका अपना अधिकतर समय राजनीति में लगाना एक निश्चित हानि थी। वह गीता और उपनिषदों के एक अच्छे विद्वान हैं। उपनिषदों की अपूर्व महानता तथा आधारभूत मानवीयता के विषय में लिखते हुए, उन्होंने एक स्थान पर लिखा है।

"विस्तृत कल्पना, विचार का तीव्र आवेग तथा खोज निकालने की विद्रोही प्रवृति के कारण, जिसके द्वारा सत्य की पिपासा से अनुप्राणित हो कर उपनिषद का शिक्षक एवम् उसके शिष्य सृष्टि के अनछिपे रहस्यों का पता लगाते हैं, संसार की यह सर्व प्राचीन धार्मिक पुस्तक वर्तमान युगमें भी एक आधुनिकतम तथा सबसे अधिक शान्ति प्रदान करने वाली पुस्तक बन गई है"।

"जान गन्थर के शब्दों में "राजगोपालाचारी एक कट्टर ब्राह्मण, अत्यन्त धार्मिक एवं एक प्रमाणित विरागी व्यक्ति हैं। प्रसिद्ध टेनिस विशेषज्ञ जान ट्यूनिस के अतिरिक्त शायद वह ही एक व्यक्ति हैं, जिन्होंने गत वर्ष से पूर्व कभी भी कोई सचल चित्र नहीं देखा। कुछ मित्रों ने राजाजी को एक मिकी माउस चित्र देखने जाने के लिए राजी कर लिया। ब्राह्मण महाशय के लिए तो सचमुच ही यह एक परेशानी में डालने वाली बात हो गई थी।

राजाजी की सौम्य मूर्ति से किसी को भी यह आभास नहीं हो सकता कि अपनी प्रारंभिक अवस्था में उन्होंने एक मनुष्य को गोली से मारा था।

गुन्डों के लिए बदनाम सलेम ज़िले के अपने दौरे के सिलसिले में वे अपने साथ पिस्तौल रक्खा करते थे। किस्सा इस प्रकार है, आधी रात का समय था और राजाजी अपनी हचकोले खाने वाली गाड़ी के अंदर झपकियां ले रहे थे। गाड़ी रोक दी गई तथा एक लाल रोशनी गाड़ी के अंदर फेंकी गई। राजाजी चौंक पड़े, और बगैर एक क्षण की हिचकिचाहट के उन्होंने मार्ग अवरुद्ध करने वाले पर गोली चला दी। वह बुरी तरह आहत हो गया और तभी राजाजी को यह मालूम हुआ कि जिस व्यक्ति पर उन्होंने गोली चलाई थी वह चुंगी का पहरेदार था। वह उसको अस्पताल ले गए किन्तु बड़ी देर हो चुकी थी। राजाजी अपने ऊपर चलने वाले मुकदमें में छूट गए किन्तु उस क्षण से उन्होंने कोई शस्त्र न ग्रहण करने की शपथ खाई।

सन् १९४२ की एप्रिल में इलाहाबाद में होने वाली कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में देश के सामने उपस्थित होने वाले विभिन्न प्रश्नों पर बहुत वाद्‌ विवाद हुआ तथा राजाजी का कांग्रेस कार्य समिति के अधिकतर सदस्यों के साथ गहरा मतभेद था। उन्होंने कुछ ऐसे वक्तव्य भी दिए थे जिन पर कांग्रेस अध्यक्ष ने आपत्ति की थी। राजाजी ने कांग्रेस कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया, बल्कि उनको ऐसा करने के लिए बाध्य किया गया। निर्णय तो कर लिया गया किन्तु उनके सहकारियों को इस बात का बड़ा खेद था। कांग्रेस कार्य समिति के एक सदस्य जो राजाजी के उद्देश्य की ईमानदारी के प्रति बड़ा आदर रखते थे, कार्यकारिणी से राजाजी के अलग हो जाने पर रो पड़े थे। दूसरे सदस्य ने कहा था, "हम उनसे सहमत नहीं हो सकते। उन्होंने हमारे ऊपर एक पहाड़ सा रख दिया है। वह अपनी तार्किकता को एक अन्तिम सीमा तक ले जा रहे हैं, किन्तु उनका अभाव हमें खटकेगा"। राजाजी कार्यकारिणी के बाहर चले आए किन्तु वह अस्तब्ध तथा शिला की भांति दृढ़ रहे। उन्होंने इसको खेल के एक भाग के रूप में ग्रहण किया और उसी रास्ते पर बराबर चलते रहे, जिस पर कि उनको पूरा विश्वास था। वह एक विश्वास रखने वाले व्यक्ति हैं तथा

विश्वास रखने वाले व्यक्ति अपने रास्ते से कभी डिगते नहीं, चाहे उसमें कितनी ही कठिनाई क्यों न पैदा हो अथवा चाहे कितना भी तीव्र विरोध क्यों न किया जाय।

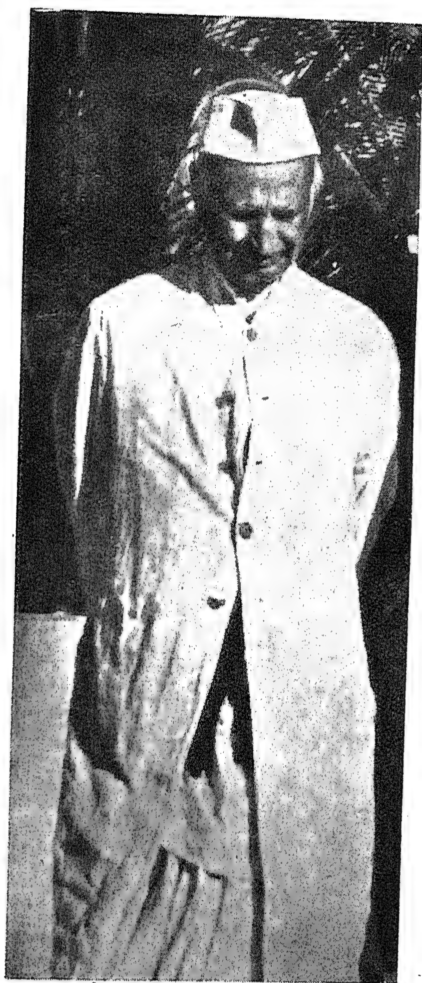
राजाजी का बहुत अधिक समय से कांग्रेस के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है और अपने राजनैतिक जीवन में उन्होंने बहुत से उतार चढ़ाव झेले हैं। कांग्रेस के निर्माण में उन्होंने काफ़ी योग दिया है। गवर्नर-जनरल के पद पर उनकी नियुक्ति देश के प्रति उनकी अमूल्य सेवा की जनता द्वारा कृतज्ञतापूर्ण स्वीकृति थी। अपने राजनैतिक विरोधियों के आक्रमणों के बावजूद वह उभर कर फिर ऊपर आ जाते हैं।

गवर्नर-जनरल के कार्यकाल की समाप्ति के बाद लोगों ने यह अनुभव किया कि उन्हें राजाजी की सेवाओं और सलाह का लाभ प्राप्त न हो सकेगा। ऐसी स्थिति में अपने निर्बल स्वास्थ्य के बावजूद उन्हें भारत सरकार के गृह विभाग मंत्री का पद स्वीकार करना पड़ा। इस पद से उन्हें असुविधा हुई। अन्त में स्वास्थ्य के कारणों से उन्होंने इस पद से अवकाश ग्रहण कर लिया। इस बार भी कुछ समाचार पत्रों ने कहा कि राजाजी ने इस बार भी पुनः राजनीति में आने के लिए सन्यास ग्रहण कर लिया है। राजाजी को यह व्याख्या अप्रिय लगी, परंतु समाचार पत्रों की धारणा सही निकली क्योंकि राजाजी ने मद्रास के मुख्य मंत्री पद को ग्रहण कर फिर राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १९५० के चुनाव के बाद कांग्रेस की स्थिति मद्रास में इतनी नाजुक हो गई कि यदि राजाजी सहायतार्थ आगे नहीं आते तो वहां कांग्रेस सत्ता सूत्र खो बैठती। मद्रास कांग्रेस के उनके प्रतिद्वंद्वियों को भी उनके सामने झुकना पड़ा इससे उन्हें अवश्य ही असाधारण संतोष प्राप्त हुआ होगा तथा उन्हें अपनी उपयोगिता की अनिवार्यता पर गौरव अनुभव हुआ होगा।



ठक्कर बापा

अधिकतर संसार के महापुरुषों के लिये शुक्रवार दुर्भाग्य जनक दिवस रहा है। इसी दिन ईसा, कृष्ण, बुद्ध, महात्मा गांधी और सरदार पटेल ने इस संसार को त्यागा। शुक्रवार को ही ठक्कर बापा का देहावसान हुआ। उनके देहावसान से अधिक दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। उनका जीवन साधनाशील और प्रेरक था। उन्होंने बड़ी लम्बी उमर पायी। वह अपने पीछे ऐसा सेवा पुंज छोड़ गये हैं जो दीर्घ काल तक अविस्मरणीय रहेगा तथा आगामी पीढ़ियों को प्रेरित करता रहेगा। गांधीजी में सही तरह के लोगों को अपना सहयोगी बनाने और देश सेवा के लिये चुनने का विशेष गुण था। उन्हें ठक्कर बापा के रूप में सच्चा और निस्वार्थी कार्यकर्ता मिला जो ऐसे सभी कार्यों में अपनी सेवायें अर्पित करने के लिये तत्पर रहता था, जिनमें इनकी सब से अधिक आवश्यकता थी। गांधीजी हरिजन तथा आदिवासियों से संबद्ध समस्याओं के बारे में सदैव उनसे सलाह लिया करते थे। जो लोग बापा और बापू को जानते थे उनका कहना था कि बापा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अधिकतर गांधीजी के निर्णयों को गांधीजी पर प्रभाव डाल कर परिवर्तित कराते थे। ऐसा कदाचित ही अन्य व्यक्ति करा सका हो। गांधीजी ने बापा के सम्बन्ध में सन् १९४१ में जो लिखा था वह उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा—"तुम दिनोंदिन युवक होते जा रहे हो। हरिजनों की सेवा आरम्भ करके तुम अग्रसर होते हुए भीलों, आसामी वन्य जातियों के और संथालों के बापा बन गये हो। तुम्हारे जैसे दानशीलता के सागर को मेरे आशीर्वाद की बूंद क्या काम की हो सकती है? पर चूंकि कहावत है कि नन्हीं नन्हीं बूंदों से मिलकर ही सागर बनता है, मैं तुम्हें आशी-



ठक्कर बापा

र्वाद देता हूं जिसका तुम जैसा चाहो वैसा उपयोग कर सकते हो।"

ठक्कर बापा ने पूना के एक महाविद्यालय में सन् १८८६ में विज्ञान का अध्ययन आरम्भ किया। उन दिनों कोई छात्रावास नहीं था तथा उन्हें और उनके साथियों को भोजन व्यवस्था स्वयं करनी पड़ी। उनके साथी उन्हें प्रेम करते तथा सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखते थे। उन्होंने आरंभिक दिनों में बम्बई राज्य में इंजीनियर के रूप में कार्य किया, सन् १८९९-१९०२ में अफ्रीका में भी इंजीनियर के रूप में कार्य किया।

भारतीय संसद के सदस्य के रूप में उन्हें यह देखकर दुख हुआ कि कुछ लोग हिन्दू-संहिता विधेयक के विरुद्ध थे। उन्होंने कहा था—"मुझे यह कहते संकोच होता है कि हमने पिछले साठ वर्षों में कोई बड़ी प्रगति नहीं की है। लोग और जनता उतने ही कट्टरपंथी तथा अप्रगतिशील हैं जितने पुराने समय में थे। अब भी अनेक शास्त्री और आचार्य विधेयक के कुछ अंशों के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं। भारतीय विधान सभा में कुछ लोग विधेयक की कुछ पुष्ट आधारों पर तलाक दे सकने सम्बन्धी धाराओं के भी विरुद्ध हैं। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि एक-पत्नी-विवाह हिन्दू सामाजिक जीवन का प्रथम सिद्धांत होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो भारत संसार के अन्य राष्ट्रों के साथ समता के आधार पर खड़ा नहीं हो सकता।" अनेक मामलों में इस वयोवृद्ध समाज सुधारक के उन युवक राजनीतिज्ञों और विधायकों से, जो आधुनिक तथा प्रगतिशील होने का दावा करते हैं, कहीं अधिक प्रगतिशील विचार थे।

ठक्कर बापा राजनेता नहीं थे। वह महान् समाज सुधारक थे। उन्होंने भारतीय समाज के लिये प्रशंसनीय कार्य किया था। जब बापू पीड़ित जनता की पीड़ा को कम करने के लिये नोआखाली गये तो बापा भी उनके साथ गये तथा वहां उन्होंने ठोस कार्य किया। वह जनता को ढाढ़स बंधाने के लिये घर घर निर्भय तथा निरस्त्र गये, पुलिस और सेना से कोई सहायता नहीं ली। उन्होंने इस सुझाव को भी पसंद

नहीं किया कि कोई अंगरक्षक उनके साथ रहे। वह अपने स्वयं अंगरक्षक थे तथा केवल परमात्मा ही उनका रक्षक था। गांधीजी को नोआखाली में उनके साहस तथा दुखी जनता के लिये किये गये कार्य को देख कर आश्चर्य हुआ। उन दिनों नोआखाली पहुंचे लोगों के बारे में बहुत कुछ कहा तथा लिखा गया था; परन्तु बापा प्रकाशन की चकाचौंध से दूर रहे। उन्होंने शांतिपूर्वक और धैर्यपूर्वक शांति तथा सद्भावना के दूत के समान जनता में कार्य किया। उसे आशा और उत्साह का संदेश दिया। गांधीजी ने एक बार कहा, "ठक्कर बापा अलभ्य कार्यकर्त्ता हैं। वह सरल प्रकृति हैं तथा प्रशंसा नहीं चाहते। कार्य ही से उनको एकमात्र संतोष मिलता तथा मनोरंजन होता है। वृद्धावस्था से उनके उत्साह में शिथिलता नहीं आई है। वह स्वयं एक संस्था हैं। यात्राकाल में जब मैं उनकी कार्यपद्धति देखता हूं तो मुझे उनसे ईर्षा होने लगती है। हम दोनों की लगभग समान अवस्था है; परन्तु उन्हें तो शारीरिक आराम की बिलकुल फिक्र ही नहीं है। उनका जीवन सच्ची सेवा का आदर्श प्रस्तुत करता है तथा हमें उस आदर्श का पालन करना चाहिये। यदि हम जन जातियों और आदिवासियों के लोगों को अपने ही लोग मानना चाहते हैं तो ऐसा केवल बापा के जीवन के अनुगमन से ही किया जा सकता है। उनकी सदैव यह तीव्र आकांक्षा रही है कि वह जरूरतमंदों तथा दुखियों से घुलें मिलें। उनसे दूर होते ही उन्हें दुख होता है। जनता में रहना ही उन्हें इष्ट हो गया है। वही उनके देवता और उनकी सेवा ही उनका जीवनाधार है।"

भारत में न तो राजनेता और न दूसरे लोग ही कार्यक्षम हैं, पर बापा में बड़ी कार्यक्षमता तथा कार्यतत्परता थी। कार्यपालन के लिये उनमें असाधारण धुन थी। वृद्धावस्था में भी जब कि उनकी दृष्टि कमजोर हो चली थी, वह हर रात अपनी दैनिकी (डायरी) लिखाते तथा दूसरे कार्य करते थे। वह कार्य से थकते नहीं थे। उन्हें कार्य करने

में ही आनन्द आता था। वह शीघ्र परिणाम पाने के लिये जल्दबाज़ी नहीं करते थे। उनका आदिम जाति सेवक संघ से संबंध था। वह इसके कार्य में जुटे रहते थे। यद्यपि वह यह जानते थे कि उनके श्रम का फल उनके जीवन-काल में प्राप्त न हो सकेगा, फिर भी इससे उनके कार्य में शिथिलता नहीं आती थी। एक बार उन्होंने कहा था, "जब तक विषमताहीन, जातिहीन समाज स्थापित नहीं होता तब तक संघर्ष जारी रहना चाहिये।" आदिम जाति के लिये कार्य के प्रति बापा के प्रेम के सम्बन्ध में श्री प्यारेलाल ने लिखा, "उन्हें यह भ्रम नहीं था, कि उनका सपना उनके जीवन-काल में सच्चा हो जायगा, फिर भी इससे उनके उत्साह और उनकी लगन में कमी नहीं आती, क्योंकि वह जानते हैं कि कार्य करने में ही पुरस्कार मिल जाता है। दुखियों और पीड़ितों के कष्टों को कम करने में ही उन्हें संतोष है तथा यही उनके लिये प्रतिदान है।"

ठक्कर बापा के हृदय में कटुता को कोई स्थान नहीं था। उसमें सदैव दूसरों के लिये प्रेम का सागर लहराता रहता था। उनके मन में अंग्रेजों के प्रति तक कटुता नहीं थी, जिन्होंने भारतीय जनता पर ज़ुल्म ढाये थे। उन्हें सचमुच में यह विश्वास नहीं था कि ब्रिटिश सरकार भारत को इतने जल्दी स्वतंत्र कर देगी। उन्होंने कहा था—"मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया और ब्रिटिश मज़दूर सरकार के प्रधान मंत्री श्री क्लीमेंट एटली को आशीर्वाद दिया कि उन्होंने हमें स्वतंत्रता प्रदान करने का साहस-पूर्ण क़दम उठाया।" उनका ख़याल था कि लार्ड रिपन और लार्ड कर्ज़न ने भारत को महानता प्राप्त करने में सहायता की थी। वह बड़े स्नेह से दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, सलेम के० सी० विजयराघवाचार्य और निस्संदेह गांधीजी की देश सेवाओं का स्मरण किया करते थे, जिन्होंने भारत को महान और गौरवशाली बनाने में योगदान किया।

हरिजन समाज के प्रति ठक्कर बापा की सेवाओं को कदापि भुलाया

नहीं जा सकता। एक बार बापा ने हरिजन सेवक संघ के मंत्रित्व से पद-त्याग करना चाहा क्योंकि वह अपना पूरा समय आदिम जातियों की सेवाओं में लगाना चाहते थे। उन्होंने उक्त पद से मुक्त होने के लिये गांधीजी की अनुमति मांगी। उनके पत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी ने लिखा—"तुम्हारा लोभ असीम है। तुम इसकी मन भर कर ज़रूर पूर्ति करो। हरिजन सेवक संघ का मंत्रिपद तुम्हारे रास्ते में आड़े नहीं आयगा। तुमने संघ का दायित्व संभाला है। केवल मृत्यु ही तुम्हें इससे मुक्त कर सकती है........तुम संघ के मंत्रिपद के दायित्वों का निर्वाह करते हुए आदिवासियों को जितना समय दे सको दे सकते हो। तुम्हारा यह अभिप्राय कभी नहीं हो सकता कि इतनी रियायत के बावजूद तुम पद त्याग करना चाहते हो। तुम अपनी सेवाएं आदिवासियों के लिये अर्पित करो, इसमें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है; पर यह कार्य हरिजनों का बलिदान करके नहीं होना चाहिये।"

वह असीम सेवाभावी थे। कार्य में डूबे रहते थे। आराम को हराम समझते थे, आशावादी थे तथा स्थिति के प्रकाशवान् पहलू को ही देखते थे। उनमें प्राप्त अवसरों का सदुपयोग करने की असाधारण क्षमता थी। वह सरल प्रकृति तथा गांधीजी के समान विनम्र थे। ठक्कर बापा अल्प ज्ञात और अल्प विज्ञापित उद्देश्यों में दीर्घ आस्था रखने तथा उनकी पूर्ति के लिये मन, वचन और कर्म से जुट जाने के कारण महान थे। वह असाधारण रूप से उपयोगी थे। वह मानवता के उन अलभ्य सेवकों में से थे जो अपना ढोल पीटे बिना भी उच्च आदर्श थे।





नरेन्द्र देव

आचार्य नरेन्द्रदेव

राजनीति में रहने पर यह बहुत ही स्वाभाविक है कि आपके दुश्मन भी कई बन जायंगे। दुश्मनों का न होना एक ऐसा सौभाग्य है जो बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है। आचार्य नरेन्द्रदेव ऐसे लोगों में से एक हैं। यह मनीषी तथा योग्य राजनीतिज्ञ न केवल उन लोगों के आदर का भाजन हैं जो उनकी राजनीति से सहमत हैं, बल्कि उनसे असहमत रहने वाले लोग भी उनका सम्मान करते हैं। वे राजनीति को व्यक्तिगत संबंध के साथ हस्तक्षेप नहीं करने देते और कांग्रेस में भी उनके प्रशंसकों तथा मित्रों की बहुत बड़ी संख्या है जो कभी उनके विरुद्ध एक भी कटु वचन का उच्चारण नहीं करते। पंडित जवाहरलाल नेहरू भी नरेन्द्रदेव के प्रति बहुत आदर तथा प्रेम रखते हैं और जब कभी उन्हें यह पता चलता है कि आचार्य जी दिल्ली आए हुए हैं तो वह उनसे मुलाक़ात करना चाहते हैं और अक्सर अपने साथ रहने के लिए आमंत्रित करते हैं। पंडित नेहरू के ही अनुरोध से नरेन्द्रदेव इस बात पर राज़ी हुए कि सरकारी दल के साथ चीन जावें। उनके कुछ मित्र अधिक प्रसन्न तब होते जब आचार्यजी उस दल में सम्मिलित होकर उसका सम्मान बढ़ाने से इन्कार कर देते। "आप चीन सरकारी दल के साथ जाने के लिए राज़ी क्यों हो गए ? आपके दल के कई सदस्यों को यह बात अच्छी नहीं लगी," कुछ मित्रों ने उनसे कहा। एक सहृदय मुस्कुराहट के साथ उन्होंने कहा, "आप जानते ही हैं, मैं मना कर ही नहीं पाया, क्योंकि कुछ पुराने मित्रों का मुझ पर दबाव पड़ा"। किसी के अनुरोध का उत्तर "नहीं" कह कर देना उन्हें बहुत नापसंद है और यही उनकी सबलता है और यही उनकी निर्बलता भी है। वह इतने विशाल हृदय हैं और इतने उदार और कृपालु हैं कि सदा दूसरों का उपकार ही करने

की सोचते हैं। कुछ मित्र इसे उनकी कमज़ोरी का चिन्ह समझते हैं, पर आचार्यजी यह पसंद करते हैं कि खुद कमज़ोर रहें पर दूसरों का उपकार करते चलें। उनसे यह नहीं होता कि दूसरों को "नहीं" कह कर निराश कर दें। आचार्य नरेन्द्रदेव शुद्धता और आचार के साथ रहते हैं, अपने व्यवहार में नम्र और दूसरों का ख़याल रखने वाले हैं, आत्मीयता और मित्रता में उदार तथा सहृदय हैं और नेतृत्व में एक चतुर, हितकर राय देने वाले तथा आधुनिक विचारों के पोषक हैं।

जब कभी एक ऐसे आदमी की आवश्यकता पड़ती है जो, राजनीति में अथवा शिक्षा में निष्पक्षतापूर्वक ईमानदारी से काम कर सके तो अक्सर आचार्य नरेन्द्रदेव का नाम ऐसे अवसरों पर लिया जाता है। कांग्रेस के साथ उनका राजनीतिक मतभेद रहते हुए भी कई बड़े कांग्रेस के पदाधिकारियों ने उनसे लखनऊ विश्वविद्यालय का उपकुलपति (वाईस चान्सलर) बनने का बहुत अनुरोध किया और मुझे यह मालूम है कि किस प्रकार दिल्ली से बाद में उनको बनारस का उप-कुलपति बनने के लिए बाध्य किया गया। उनके विपक्षी भी उनका विश्वास करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि वे कभी कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जो अनुचित या सम्मान के विरुद्ध होगा। कई कांग्रेस के नेताओं ने उनसे इन विश्वविद्यालयों का उप-कुलपति पद को स्वीकार करने के लिए कहा क्योंकि वे जानते थे कि आचार्य जी अपने पद से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठायेंगे और कभी भी छात्रों को कांग्रेस अथवा सरकार के विरुद्ध कोई काम करने के लिए नहीं भड़कायें। यह आशा की जाती थी कि उनके विपक्षी दल में रहने पर भी विश्वविद्यालयों का नैतिक स्तर ऊंचा उठ जायगा। ऐसा हुआ भी। नरेन्द्रदेव के समय में लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों ने बहुत शिष्ट और संयत व्यवहार किया, क्योंकि वे सदा इस बात का ख़याल रखते थे कि कहीं आचार्य नरेन्द्रदेव की भावनाओं को धक्का न लगे। जब कभी उन्हें कोई उत्पात करना होता था, वे सदा यह सोचते थे कि इस बारे में आचार्य

नरेन्द्रदेव का क्या सोचेंगे। उनका सम्मान अध्यापक और विद्यार्थी दोनों करते हैं।

नरेन्द्रदेव के राजनीति में चले जाने से विद्वानों की दुनियां को बहुत बड़ी क्षति पहुंची है। वह स्वभावतः मनीषी हैं। जब वह पढ़ाते अथवा पढ़ते होते हैं तो बहुत प्रसन्न रहते हैं। वह एक उच्च विचारक हैं और कई पेशेवर अध्यापकों में जो पाखंडीपन होता है उससे वह कोसों दूर हैं। विद्वत्ता के भार को अपने सर पर फूल की तरह धारण करने पर भी उन्हें कभी यह गुमान नहीं हुआ कि उन्हें "बहुत कुछ" आता है। वह सदा सीखने के लिए प्रस्तुत रहते हैं और अपने विद्यार्थियों से भी कुछ न कुछ सीख लेते हैं। उनकी आंखें चमकती हैं, चेहरे पर मुस्कुराहट खेलती रहती है और जब कोई व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक विचारणीय बात कहता है तो वह ध्यानपूर्वक उसे सुनते हैं। वह एक अच्छे बातचीत करने वाले और धैर्यपूर्ण श्रोता हैं। उनकी संगति में आपको कभी उनकी विद्वत्ता का आतंक नहीं सतायेगा। कभी आपको ऐसा अनुभव नहीं होने देते कि वह बहुत पढ़े लिखे हैं और उनके चारों तरफ जो लोग हैं वह निरे कोरे हैं। अपने सामने वह तुच्छ और छोटे से छोटे को भी ऐसा अनुभव कराते हैं कि उसे घबराहट नहीं होती। साधारण शिष्टाचार के प्रति उनकी अत्यधिक अभिरुचि है। वह बहुत शिष्ट हैं, ऐसे व्यक्ति बहुधा नहीं मिलते।

वह गम्भीर विचारक हैं, पैठने वाले वक्ता हैं, विज्ञ भाषाविद हैं, भारत में समाजवाद के सर्व श्रेष्ठ प्रचारक आचार्य नरेन्द्रदेव बुद्धिवादियों के बीच बुद्धिवादी हैं और देश भक्त में अग्रगण्य हैं। उनके प्रशंसक और आलोचक आपस में बहस करेंगे कि स्वतंत्रता संग्राम का यह सेनानी जिसने सौ युद्धों में भाग लिया है, यदि सरस्वती का ही पुजारी रहता और संस्कृति के क्षेत्र में देश की सेवा करता तो राजनीति के धूल भरे अखाड़े से ज्यादा अच्छी शोभा का पात्र होता कि नहीं, पर इस बात पर किसी को आपत्ति

नहीं होगी कि आचार्यजी ने अपने राजनैतिक जीवन में एक उच्च आदर्श का प्रयोग करके उसको अधिक रुचिकर बनाया है।

जब अपने समाजवादी साथियों को लेकर वह कांग्रेस से अलग हो गए तो उत्तर प्रदेश में आचार्यजी के कांग्रेस से बाहर निकलने पर बड़ा व्यापक खेद लोगों को हुआ। उस समय उत्तर प्रदेश के प्रान्तीय कांग्रेस के मंत्री ने उनको एक पत्र लिखकर उनसे प्रार्थना की कि अपने इस निर्णय को दुहरा लें और कांग्रेस को न छोड़ें। आचार्यजी ने जो उत्तर भेजा, वह बहुत शानदार था। उन्होंने कहा, "एक ऐसे समय में जब हम लोगों से यह कहा जा रहा है कि हमारे इरादे गड़बड़ हैं और हम कांग्रेस में फूट फैलाना चाहते हैं, और जब कुछ सामर्थ्यवान उच्च पदाधिकारी यह धमकी देते हैं कि हमको नष्ट भ्रष्ट कर देंगे, यह प्रसन्नता का विषय है कि इस प्रांत के कांग्रेस के सबसे बड़े कार्यकर्त्ता तो हमारे उन इरादों को समझते हैं जिनके कारण हमने यह क़दम उठाया है।

"मैं इन अच्छी भावनाओं का सम्मान करता हूं और प्रांतीय समिति ने जो हमारे लिए सद्‌भावना दिखाई है उसके लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूं। हमारे लिए यह और भी अधिक ख़ुशी की बात होती, यदि हमारे लिए यह सम्भव होता कि हम उनके आह्वान को स्वीकार कर सकते और कांग्रेस में वापस जा सकते।

"नम्रता के साथ मुझे यह कहना पड़ रहा है कि इस समय जो परिस्थिति है उसमें हम दोनों के लिए यही अच्छा है कि जो कुछ हो चुका है उसे अंगीकार करें। अपने मित्रों के इस वापस चले आने के आग्रह को स्वीकार नहीं कर सकते हैं, यह देखकर मुझे वेदना होती है। फिर भी मैं प्रार्थना करता हूं कि आपका मुझ पर जो प्रेम है उसका प्रयोग हमारे इरादों को कमज़ोर करने के लिए मत कीजिए, बल्कि उस प्रेम का प्रभाव यह पड़ना चाहिए कि हम उस रास्ते पर सीधे चल सकें जो हमने अपने लिए चुना है।

"यह जानकर मुझे बहुत शान्ति मिलती है कि इस अन्यायपूर्ण और

निर्दय संसार में हमारे पुराने कांग्रेस मित्र ऐसे हैं जो हमारे निर्णय को सही नहीं समझते, पर हमको उदारतापूर्वक समझने की कोशिश करते हैं और हमारी भूतपूर्व सेवाओं को अंगीकार करते हैं।"

नरेन्द्रदेव इस देश के वक्ताओं में एक सर्व श्रेष्ठ हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी के वक्ता हैं। उनकी धारा प्रवाह शैली बहुत ही प्रभावशाली है। उनके भाषणों को भारी बनाने में केवल भावना का ही प्रयोग नहीं होता, बल्कि गहरी विद्वत्ता का भी उनमें समावेश होता है। वह अपने श्रोताओं को मुग्ध कर लेते हैं और उनके भाषण का स्तर सदा ऊंचा रहता है। उनके भाषण के अन्त में सदा लोगों ने यह पूछा, "क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि वह बहुत अच्छे वक्ता और बहुत जानकार व्यक्ति हैं ?" किसी भी विद्वानों की सभा में वह अपना पद प्रतिष्ठित रख सकते हैं।

कार्तिक शुक्ल अष्टमी, संवत् १९४६, सन् १८८९ को सीतापुर के एक मध्यम वर्ग के खत्री परिवार में आचार्य नरेन्द्रदेव का जन्म हुआ। बचपन में वह गीता और अमरकोष कंठस्थ रखते थे। वह तिलक के प्रशंसक थे और दस वर्ष की अवस्था में कांग्रेस का अधिवेशन देखने के लिए गए। उस समय भाषण अंग्रेज़ी में होते थे और उनकी समझ में बहुत कम आया, फिर भी वह वाद विवाद को सुनते ही रहे। वह म्योर सेन्ट्रल कालेज के छात्र थे और अपनी शिक्षा समाप्त करने पर उन्होंने फ़ैज़ाबाद में वकालत की। अपनी युवावस्था में उन्होंने भी विलायत जाकर आई० सी० एस० (इंडियन सिविल सर्विस) की परीक्षा देने की भी सोची थी, पर उनकी माता को विदेश गमन का विचार अच्छा नहीं लगा। क़रीब पांच साल तक उन्होंने वकालत की होगी कि वह असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े और उस समय से उन्हें कई बार जेल यात्रा करनी पड़ी। सन् १९४२ में वह कांग्रेस के कार्यकारिणी के सदस्यों के साथ अहमदनगर क़िले में क़ैद थे, जहां उन्होंने कुछ विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे।

सन् १९२१ में मित्रों के दबाव के कारण विशेषतया जवाहरलालजी

के कारण उन्होंने काशी विद्यापीठ में प्रवेश किया। काशी विद्यापीठ देश भक्ति की परम्पराओं पर संचालित एक राष्ट्रीय संस्था थी। पांच वर्षों के बाद वह उसके प्रधान अध्यापक हो गए और उनको आचार्य का पद मिला। नरेन्द्रदेव के पिता बाबू बलदेवप्रसाद एक सफल वकील थे और उन्हें इस बात की उत्कट इच्छा थी कि उनका पुत्र भी वकालत करे, पर नरेन्द्रदेव भारतीय राजनीति के गहरे समुद्र में कूद पड़े और उन्हें अपने पेशे के लिए समय ही नहीं मिलता था। वह शिल्प कला विज्ञान के विशेषज्ञ बनना चाहते थे, पर सन् १९१३ में जब उन्होंने एम० ए० पास किया तो उन्हें पता चला कि वह ऐसा नहीं कर सकते। सन् १९१५ में उन्होंने होम रूल लीग की फैज़ाबाद शाखा का मंत्री पद स्वीकार किया। सन् १९०६ में वह दर्शक बनकर कलकत्ता कांग्रेस के अधिवेशन में गए। वहां उन्होंने अरविन्द घोष और विपिन चन्द्र पाल के भाषण सुने। श्रीअरविन्द ने नए दल के विधान पर अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था। सन् १९१० में जब कांग्रेस का अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ तो उसे सुनने के लिए वह नहीं गए, यद्यपि वह इलाहाबाद ही में एक विद्यार्थी थे, कारण यह था कि कांग्रेस से उग्रवादी लोगों को निकाल दिया गया था।

नरेन्द्रदेव सदा अच्छे छात्र थे। "मेम्वायर आफ ए रिवोल्युशनरी", क्रोपोटकिन की "म्युचुअल एड" और लेख, ए० के० कुमारस्वामी का "नेशनल आइडीयलिज़्म", अरविन्द घोष के लेख, हर दयाल की पुस्तकें, तुर्गनेव की कहानियां, गैरीबाल्डी का जीवन चरित्र, मैज़िनी के लेख, फ्रान्स की क्रान्ति पर पुस्तकें, ब्लाट्सशेलि की 'थिअरी आफ स्टेट' और रूस का बहुत सा निहिलिस्ट साहित्य उन्होंने अच्छी तरह पढ़ा। वह गोविन्दवल्लभ पन्त, कैलाश नाथ काटजू, शिव प्रसाद गुप्त और ठाकुर छेदीलाल के सहयोगी थे।

जब अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई तो

पटना अधिवेशन में उन्होंने सभापतित्व किया। तब से वह समाजवादी दल के दिशा निर्णायक रहे हैं। पटना अधिवेशन में उनका भाषण बहुत विद्वत्तापूर्ण था और उसने बड़ी हलचल पैदा की। कई वर्षों तक वह किसान नेता थे और किसानों के लिए उत्तर प्रदेश में बहुत काम किया। अखिल भारतवर्षीय किसान सभा के दो बार वह अध्यक्ष बनाए गए और गया तथा वेदुअल में १९३९ और १९४२ में उन्होंने सभापतित्व किया।

नरेन्द्रदेव को गांधीजी बहुत चाहते थे। एक बार उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष बनने के लिए उनका नाम भी लिया, पर कार्यकारिणी समिति ने उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। सुभाषचन्द्र बोस ने भी नरेन्द्रदेव से अपनी कार्यकारिणी का सदस्य बनने की प्रार्थना की जब कि वह कई अन्य कांग्रेसी सहयोगियों के खिलाफ थे। सन् १९४२ में गांधीजी ने नरेन्द्रदेव के दमा का इलाज किया और वह करीब-करीब अच्छे हो गए थे। उन दिनों में गांधीजी और नरेन्द्रदेव एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आए और दोनों ने एक दूसरे का बहुत सम्मान किया।

आचार्य नरेन्द्रदेव को श्रद्धांजलि देते हुए एक बार मेहरअली ने ठीक ही कहा—

"उनका दिल को खींच लेने वाला आचरण, उनकी निष्कपट पर महान् विद्वत्ता, उनके चरित्र तथा विचारों की सुंदरता ने उन्हें हज़ारों का प्रेम-भाजन बना लिया है। उनका उदाहरण उस व्यक्ति का उदाहरण है जो आदर्श के लिए जीवित रहता है और जिसका एक विश्वास या आस्था है कि समाज वर्गहीन बन जायगा जहां ग़रीबी, अज्ञानता और शोषण नहीं रहेगा, उनकी आस्था आम जनता पर है कि उसमें क्रान्ति करने और नए समाज का निर्माण करने की शक्ति है और इस तरह नए संसार का निर्माण हो सकता है। अपने जीवन को वह इतनी पवित्रता के साथ ध्येय की पूर्ति के लिए चलाते हैं और उसमें इतनी आत्मिक सुंदरता है कि जो भी उनके

सम्पर्क में आता है, वही महान बनने लगता है और इससे राजनीतिक जीवन में एक नया स्तर उपस्थित होता है ।"

नरेन्द्रदेव उन सुसंस्कृत और शिष्ट व्यक्तियों में हैं जिनकी संगति में ख्याति प्राप्त विद्वान और राजनीतिज्ञ लोग रहना पसंद करते हैं। नम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है और अपने को ज़ोर देकर वह कभी दूसरे पर नहीं लादते । उनका मृदु स्वभाव और सुमधुर शील, उनके व्यक्तित्व में एक सूक्ष्म सौन्दर्य ला देता है ।





सुचिता कृपालानी

सुचिता कृपालानी

कई वर्ष पहले, एक दिन सायंकाल एक महिला एक तीक्ष्ण और स्पष्ट रेखायें अंकित मुद्रावाले सज्जन के साथ मेरे एक मित्र से मिलने आयीं। ज्योंही वे बैठक में प्रविष्ट हुए त्योंही सभी उनका स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए। कुछ क्षणों के लिए शान्ति छा गयी। इसके बाद महिला ने व्यंगपूर्वक कहा, "मेरे पति कल विश्वविद्यालय में भाषण करेंगे और वामपक्षीय राजनीति के बारे में कुछ कहेंगे।" उनके इन शब्दों से मुझे कुछ धक्का लगा और मैं वामपक्षीय नेताओं के समर्थन में कुछ तर्क उपस्थित करने लगा। मेरी बातों से महिला के साथ आए सज्जन कुछ भड़क पड़े। उन्होंने तीन चार वाक् प्रहार किए जिससे मैं अवाक् तथा कुछ उदास हो गया। मैंने अपने मित्रों से धीरे से पूछा—"ये कौन थे?" उन्होंने बताया कि ये आचार्य कृपालानी थे और उनके साथ श्रीमती कृपालानी थीं। सुचिता देवी बड़ी मधुरता से कई बातें करती रहीं। वह बड़ी सरलता और सुंदरता से अंग्रेजी बोल रही थीं। इस बार आचार्य खूब सिगरेट पी रहे थे या हम पर उपेक्षा का धुंआ छोड़ रहे थे। उस दिन के बाद मेरी उनसे अधिकतर भेंट होती थी। मेरा उनसे ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ता गया त्यों-त्यों उनके प्रति स्नेह बढ़ता गया।

सुचिता देवी सरल प्रकृति महिला हैं। उनमें ढकोसलापन नाम मात्र को नहीं है। वह सन् १९४१ में गिरफ्तार कर ली गईं तथा उन्हें एक साल की कैद की सजा हुई। जो महिलायें उनके साथ जेल में थीं उनका कहना था कि जेल में उनसे अधिक अच्छा और दयालु साथी मिलना कठिन था। वह जेल से बाहर मुश्किल से कुछ महीने रही थीं कि सन् १९४२ का स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया तथा उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन

चलाने के लिए भूमिगत हो जाना पड़ा । बहुत दिनों तक वह पुलिस को चकमा देती रहीं तथा गिरफ्तारी से बची रहीं, परंतु आखिर एक दिन एक आई० सी० एस० (इंडियन सिविल सर्विस) अफसर जो उनका चचेरा भाई था, के निवास स्थान पर गिरफ्तार कर ली गईं। वह लखनऊ जेल लाई गईं। यहां खुफिया पुलिस के अफसरों ने उनसे कुछ सूचना पाने के लिए उन्हें कई दिन तक परेशान किया। वह कुछ दिन बिलकुल एकाकी रखी गईं तथा उन्हें लखनऊ जेल में कष्टमय दिन व्यतीत करने पड़े ।

सुचिता देवी गांधीजी का मनोयोगपूर्वक अनुगमन करती थीं। उन्होंने कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट का बहुत सा कार्य किया। एक दिन मैंने उनसे पूछा—"क्या आप इस तरह के काम से ऊबती नहीं हैं ?" उन्होंने कहा—"मैं जानती हूं कि इस तरह का कार्य कठोर है तथा इसमें कोई आकर्षण नहीं है; पर क्या उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह कार्य स्वयं ही पुरस्कार नहीं है ?"

सुचिता देवी ने सन् १९३० में दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कालिज से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। उसी वर्ष उनके पिता का देहांत हो गया तथा परिवार के भरणपोषण का भार उन पर आ पड़ा। उन्होंने कुछ समय तक लाहौर के गंगाराम स्कूल में अध्यापन कार्य किया और बाद में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में इतिहास की अध्यापिका नियुक्त हो गईं। उन्होंने सन् १९३४में बिहार भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ आचार्य कृपालानी के साथ कार्य किया। उनका आचार्य कृपालानी के साथ सन् १९३६ में विवाह हुआ। वह सन् १९३९ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महिला विभाग की मंत्री नियुक्त हुईं। सन् १९४३ में उन्होंने कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट का कार्य भार सम्हाला। वह इसकी संगठन मंत्री थीं।

सुचिता देवी राजनीतिक नेत्री हैं पर वह राजनीति में डूबी नहीं रहतीं। वह विश्राम के लिए इससे मुक्त हो सकती हैं। वह मधुरता से गाती हैं।

वह अधिकतर गांधीजी की प्रार्थना सभा में भजन गाती थीं। अपनी स्वाभाविक सरलता के कारण वह अधिकांश लोगों से जल्दी घुल मिल जाती हैं। वह उच्च शिक्षित तथा सुसंस्कृत मंडलियों में सम्मान प्राप्त कर लेती हैं तथा अशिक्षितों और जन साधारण में भी स्नेह अर्जित कर लेती हैं। उन्हें उच्च राजनीतिक चर्चा करने में आनंद आता है। राजनीतिक गति विधियों से प्रेम है। पर यदि आवश्यकतावश उन्हें घर के चौके में काम करना पड़े तो वह कोई असुविधा अनुभव नहीं करतीं। घरेलू काम में उन्हें उतना ही आनंद आता है जितना राजनीतिक भाषण देने में। वह अपने पति के राजनीतिक कार्यों में अपना सहयोग देती हैं। उनके लिए कपड़े भी सी देती हैं।

मैंने अनेक विश्वसनीय सूत्रों से सुना है कि सुचिता देवी गांधीजी की कृपा पात्र और विश्वास पात्र थीं। गांधीजी के कृपा पात्रों का भाग्य सदैव ईर्षा योग्य नहीं है। उन्हें अधिकतर उच्च पदों से दूर रहना पड़ता था। उन्हें मुश्किल से प्रकाशन-प्रसिद्धि प्राप्त होती थी। एक बार एक कांग्रेस नेता ने गांधीजी से कहा कि आप राजेन्द्र बाबू से अत्यधिक कार्य कराते हैं। कहा जाता है कि गांधीजी ने उसे उत्तर दिया—"क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं उन पर विश्वास करता हूं तथा उन्हें उत्तरदायित्व-पूर्ण पदों के लिए दीक्षित करना चाहता हूं।" यदि गांधीजी का अपने लोगों को दीक्षित करने का यही तरीका था तो उन्होंने सुचिता देवी को भी महान उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों के लिए दीक्षित किया था। सुचिता देवी अपनी ईमानदारी, योग्यता और सचाई के कारण गांधीजी की बड़ी विश्वास पात्र थीं।

एक महान् राजनेता तथा असाधारण बौद्धिक की पत्नी होने के नाते उन्हें एक कठिन व्यक्ति के साथ निर्वाह करना पड़ता है जिसके रहने और सोचने का तरीका जन साधारण से भिन्न है। जब उनका कृपालानी के साथ विवाह हुआ तब वह (कृपालानी) सामान्य आरामों के प्रति नितांत

उदासीन थे । सुचिता देवी की प्रशंसा में यह अवश्य उल्लेखनीय है कि उन्होंने इन कुछ वर्षों में आचार्य को गृहस्थी के कुछ आरामों से उनकी उदासीनता के बावजूद, अवगत करा दिया है ।

सुचिता देवी ने पूर्वी बंगाल में नोआखाली में जो कार्य किया उससे उनकी देश भर में प्रशंसा हुई । वहां वह गांधीजी के साथ कई सप्ताह तक थीं तथा उन्होंने पीड़ित जनता की सहायता की । वह उन लोगों के लिए जो धर्मांधता के शिकार तथा अपने गृहों से उद्वासित थे, मानो दया की बहिन ही थीं । उद्वासितों के प्रति उनका सेवा कार्य अविस्मरणीय है । उन्होंने उनके प्रति व्यवहार में बड़े धैर्य और कुशलता का परिचय दिया । उन्होंने उनके साथ बड़ी दया और सहानुभूति के साथ व्यवहार किया । मैंने उद्वासितों की भीड़ को उनसे सहायता और मार्गदर्शन पाने के लिए उनके घर में एकत्र होते हुए देखा है ।

सुचिता देवी को व्यापक सम्मान प्राप्त है । उनसे मतभेद रखने वाले भी उनकी प्रशंसा करते हैं । बहुत से लोग उनके पति के स्वभाव से भयभीत रहते हैं तथा उनके पास जाने में झिझकते हैं पर कोई भी सुचिता देवी के पास जाने में नहीं झिझकता । यदि आचार्य तीक्ष्ण और चुभती बातों से चोट पहुंचाते हैं तो सुचिता देवी अपनी मीठी बातों से धीरज बंधाती हैं । सुचिता देवी ने कांग्रेस संगठन का परित्याग कर दिया है पर इस संगठन में ऐसे अनेक लोग हैं जो उनका सच्चा सम्मान करते हैं । वह प्रख्यात रचनात्मक कार्यकर्त्री हैं । उन्हें उनके सहकर्मी बहुत चाहते हैं । वह संसद के ऐसे थोड़े से सदस्यों में से एक हैं जिनकी बातें सम्मान के साथ सुनी जाती हैं । वह प्रभावशाली भाषण करती हैं, वह अपने उद्देश्यों का सच्चाई और योग्यता से समर्थन करती हैं । इसका श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है ।

संयुक्तराष्ट्र संघीय महासभा के भारतीय प्रतिनिधि मंडल की एक सदस्या के रूप में उन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया । उनके राजनीतिक

प्रतिद्वंद्वियों ने भी यह स्वीकार किया कि उन्होंने बड़ी योग्यता का परिचय दिया। भारत सरकार को विभिन्न सूत्रों से ज्ञात हुआ कि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघीय महासभा को प्रभावित किया। विभिन्न समितियों में उन्होंने जो कार्य किये हैं उनकी प्रशंसा हुई। अमेरिका में उन्होंने अपना बहुमूल्य समय दूसरों की नाईं बाज़ारों में सौदा ख़रीदने, जगह जगह घूमने और व्यक्तिगत संपर्क बढ़ाने में व्यतीत नहीं किया। उन्होंने अपने समय का सदुपयोग अपने प्रिय विषयों और समस्याओं के विचारपूर्ण अध्ययन में किया।

अमेरिका में अपने प्रवासकाल में वह विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन से मिलीं तथा उनसे बड़ी प्रभावित हुईं। उन्हें इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें ऐसे सुविख्यात वैज्ञानिक से मिलने का अवसर मिला।

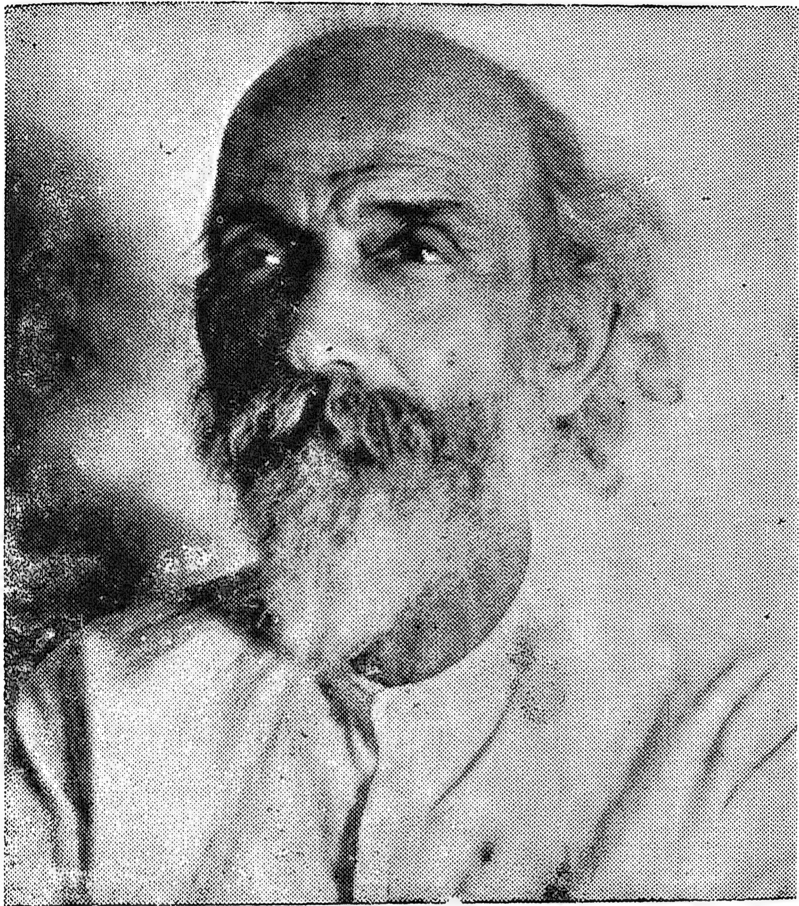
सुचितादेवी अपने पति के लिये महान् निधि हैं। उनकी पत्नी, साथी और सहयोगिनी के रूप में वह उनके भार में हाथ बँटाती हैं। वह बड़ी विनम्र और सुशीला हैं।



पुरुषोमत्तदास टंडन

यदि आप उस दाढ़ीवाले चेहरे में उन दो बड़ी-बड़ी और बोलती हुई सी आंखों को देखें तो आप उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। यदि आप बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन से बातचीत करें, तो आपको ऐसा अनुभव होगा, मानो आप साक्षात् सच्चाई और ईमानदारी से बातें कर रहे हैं। यह विलक्षण व्यक्ति अनेक पहलुओं से आश्चर्यजनक है। देश में ऐसे बहुत कम लोग हैं जो इस हद तक ईमानदारी और इतने बीहड़ रूप से सत्यनिष्ठ हों। वह बड़े क्षमाशील हैं और अत्यन्त भावुक हैं। उनके हृदय में उस मानवीय करुणा की अजस्र धारा बहती है, जिसके कारण मनुष्य-जीवन धन्य हो जाता है। बड़ी से बड़ी यातनायें सहन करना उनके जीवन का ध्येय हो गया है, वह यातना चाहे देश भर के लिए हो या अपने देशबन्धुओं के लिए। वह आत्म-संयम की जीवित प्रतिमा हैं और अपने जीवन से उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि संसार के प्रति रागात्मक भावनाएं रखते हुए भी मनुष्य किस प्रकार पूर्ण विरागी का जीवन व्यतीत कर सकता है। उनके विधान सभा के अध्यक्षकाल में एक पत्रकार ने उनका वर्णन इन शब्दों में किया था कि, "वेतन भोगी संन्यासी और घर-द्वार वाला तपस्वी।"

टंडन जी ने अपने विद्यार्थी काल में क्रिकेट के मैदान में अनेक बार विजय लाभ किया है। उन दिनों वह प्रयाग विश्वविद्यालय की क्रिकेट टीम के कप्तान थे। अब बहुत कम लोगों को इस बात पर विश्वास होगा कि किसी समय, आज के यह राजर्षि खेल-कूद में भी अभिरुचि रखते थे और उनसे भी कम लोगों को इस बात पर यक़ीन होगा कि वह अपनी युवावस्था में अखाड़ा और कुश्ती में भी बड़ी दिलचस्पी लेते थे। उनकी



पुरुषोत्तमदास टंडन

शतरंज में भी बड़ी रुचि थी। इस संबंध में यह कथा प्रसिद्ध है कि टंडनजी एक बार बी० ए० की परीक्षा में केवल इस लिए अनुत्तीर्ण हो गए क्योंकि जिस दिन उन्हें परीक्षा देने जाना था उस दिन वह शतरंज खेलने में इतने खो गए कि परीक्षा के विषय में बिलकुल भूल गए। इस घटना के बाद इस प्रकार शतरंज में तन्मय रहना उन्हें अनिष्टकारी अनुभव हुआ और उन्होंने इस खेल को सदैव के लिए तिलांजलि दे दी।

टंडनजी ने कबीर का पर्याप्त अध्ययन किया है और मैंने उन्हें उस महान रहस्यवादी तत्ववेत्ता के संबंध में अकसर बोलते हुए सुना है। वह कबीर के विचारों की कठिन गुत्थियों को अपने परिज्ञान तथा बहुमूल्य उद्धरणों से सुलझाने का प्रयास किया है, जो उनके जैसे स्नातक के सर्वथा योग्य है। वह अपनी सजीव व्यंजना तथा समन्वय शक्ति के द्वारा कबीर के परस्पर विरोधी सिद्धान्तों की अस्तव्यस्तता में भी क्रमिक तारतम्य ढूंढ़ निकालते हैं, जिसके कारण सुननेवाला अनायास ही चकित एवं श्रद्धासिक्त हो उठता है। वह हिन्दी में विशेष अभिरुचि रखते हैं, और हिन्दी उनके प्रेम का प्रतिरूप है। एक बार कुछ लोगों को अनुभव हुआ कि टंडनजी हिन्दी का प्रचार जरूरत से ज्यादा कर रहे हैं और वे उन पर यह आरोप लगाना चाहते थे कि उनका यह कार्य कांग्रेस विरोधी होता जा रहा है। इस पर कांग्रेस कार्यसमिति के एक सदस्य ने कहा कि हिन्दी के मामले में किसी प्रकार का समझौता करने के बजाय टंडनजी कांग्रेस छोड़ देना अधिक पसंद करेंगे। संसद में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में उन्होंने बड़ी ओजपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक वक्तृता दी थी। इस प्रश्न पर उनका बहुत विरोध भी हुआ, किन्तु उन्होंने बड़े साहस और दृढ़ संकल्प के साथ मामले को आगे बढ़ाया और अन्त में उन्हें सफलता मिल ही गयी। फिर भी हिन्दी अंक स्वीकार नहीं किए गए, जिस पर उन्हें कुछ असंतोष और दुख भी हुआ लेकिन सुयोग देखकर वह फिर हिन्दी अंकों की स्वीकृति के लिए प्रयास करेंगे और उन्हें पूर्ण आशा है कि उनको इस कार्य में भी

सफलता मिल जायगी। वह हिन्दी के शिवम् पक्ष के प्रतीक हैं और इस भाषा के सबसे बड़े प्रवर्त्तक हैं। समस्त देशमें वह हिन्दी प्रचारकी आत्मा और जीवन हैं।

टंडनजी प्रयाग विश्वविद्यालय के एक प्रतिभाशाली छात्र थे और उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकालत भी की थी। कुछ समय तक वह नाभा राज्य के मंत्री और फिर पंजाब नैशनल बैंक के सेक्रेटरी भी रह चुके हैं। वह एक कांग्रेसजन के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट हुए थे, और प्रयाग नगरपालिका के अध्यक्ष (चेयरमैन) भी रह चुके हैं। वह लोक सेवक मंडल के अध्यक्ष थे और कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष रह चुके हैं। विधान सभा के अध्यक्ष रह कर उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि किसी दल से सम्बद्ध कोई व्यक्ति निष्पक्ष अध्यक्ष भी हो सकता है। उन्होंने उत्तर प्रदेश विधान सभा में एक बार कहा था कि मैं बहुमत प्राप्त कर लेने मात्र से अध्यक्ष का पद ग्रहण नहीं कर सकता, यदि अल्पमत के अधिकांश लोग भी मुझे अध्यक्ष पदासीन देखने के इच्छुक नहीं हैं तो मैं पदत्याग करना ही उचित समझूंगा। किसी व्यक्ति को यह चुनौती स्वीकार करने का साहस न हुआ क्योंकि उनकी निष्पक्षता और ईमानदारी संदेह से परे की वस्तुयें थीं और संसद के प्रत्येक वर्ग की उन पर पूर्ण आस्था थी। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि अध्यक्ष के रूप में वह विट्ठलभाई पटेल से भी आगे निकल गए, जिनकी लोग इतनी सराहना और सम्मान किया करते थे।

कभी-कभी टंडनजी सिद्धान्तों में किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं होते और जिस चीज के लिए उनके हृदय में आस्था नहीं उत्पन्न की जा सकती, उसके संबंध में कोई बात स्वीकार नहीं करते। अवसरवादियों को इस बात से अक्सर बड़ा धक्का लगता है, क्योंकि इससे उनकी स्वार्थ-सिद्धि नहीं हो पाती। वह अत्यधिक स्पष्टवादी और अद्वितीय साहसी हैं। अपने राजनीतिक पदोत्थान के लिए छोटी-छोटी चालबाजियों के समर्थक नहीं है। इससे बरसों तक उन्हें राजनीतिक

क्षेत्र में उच्च पद न मिल सका। वह बहुत पहले ही कांग्रेस अध्यक्ष हो जाते लेकिन अध्यक्ष पद के भाग्यनिर्णायकों नें उन्हें न होने दिया। किसी ने उनसे कहा कि यदि वह हिन्दी के मामले में अपने विचारों पर अड़े रहेंगे, तो उसका आगामी कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में उनके लिए बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस पर उनकी भवें तन गईं, चेहरा तमतमा उठा और उन्होंने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया, "आप भी कैसी बातें करते हैं? क्या मैं अपने व्यक्तिगत उन्नति की परवाह भी करता हूं? मेरे सिद्धान्तों में परिवर्तन असंभव है और इसकी आशा करने के अर्थ हैं कि आप मझे बिलकुल नहीं समझ सके।" मैं उनकी यह बात सुनकर हर्ष से उछल सा पड़ा। ऐसा लगा, मानो कोई दिव्य अनुभूति मेरे अंदर जाग उठी है।

टंडनजी नितान्त स्पष्टवादी और साहसी हैं। वह इने गिने राजनैतिक पुरुषों में से एक हैं जो संकट काल में कभी विचलित नहीं होते तथा दबाव के कारण सिद्धांतों से डिगते नहीं हैं। वह कठिन परिस्थितियों में भी सत्य का झंडा ऊंचा रखते हैं जब कि अनेक लोग अर्ध सत्य को ही सत्य मानने के लिए लोभित हो जाते हैं। वह सिद्धांतों में दृढ़ आस्था रखते हैं तथा आश्चर्यजनक दृढ़ता से उनका पालन करते हैं। इसका परिणाम सामान्य माप दंड से आकर्षक नहीं रहा। अनेक वर्षों तक सामान्य नेता कांग्रेस कार्यसमिति में सम्मिलित किए गए परंतु वह उससे बाहर रखे गये। कांग्रेस का अध्यक्ष पद भी उन्हें बहुत देर से तथा कुछ अनिवार्य परिस्थितियों में प्राप्त हुआ। यद्यपि वह कांग्रेस अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुए, परन्तु उन्हें कार्य काल समाप्ति के पहले ही पद त्याग करने के लिये विवश होना पड़ा। इसका मूल कारण यह था कि वह किसी दूसरे के इशारे पर नाचने के लिये तथा पदारूढ़ बने रहने के हेतु दूसरे के विचारों को अपने विचार बनाने के लिये तैयार नहीं थे। उनके अन्यतम अनुचरों ने भी तात्कालिक लाभों के फेर में पड़ कर उनका साथ छोड़ दिया पर इससे वह निराश नहीं हुए। इस पूरे कांड में उन्होंने बड़े धैर्य, बड़ी गंभीरता

और शालीनता का परिचय दिया। इससे अनेक विरोधी भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। टंडनजी ने अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की दिल्ली की जिस बैठक में अध्यक्ष पद त्याग किया था, उसमें मैं उपस्थित था। उन्होंने कांग्रेस जनों से बड़ा मार्मिक अनुरोध किया कि वे लोभ लालच के शिकार न बनें, तथा सत्य के पथ का अनुसरण करें। उनका भाषण संक्षिप्त था। उसमें कटुता नहीं थी। उन्होंने मुस्कुराते हुए सभा भवन का त्याग किया। उनके चेहरे पर यह स्पष्ट भाव था कि उन्होंने जो उचित समझा किया। यद्यपि इस अवसर पर उनकी पराजय हुई, परन्तु वास्तव में यह उनके लिये विजय थी। देश भर में उनके साहस और उद्देश्य की पवित्रता की प्रशंसा हुई।

कभी कभी लोग उन्हें संप्रदायवादी समझने की भूल कर बैठते हैं। इसके विपरीत उनके अनेक ऐसे मुसलमान दोस्त हैं जिसके प्रति उनके हृदय में बड़ा सम्मान है और वे मुसलमान भी टंडनजी को बहुत मानते हैं। यह सत्य है कि वह देश के विभाजन के बड़े विरोधी थे। उन्होंने मुस्लिम लीग और उसके नेताओं की घोर निन्दा की थी, किन्तु सर्वसाधारण मुसलमानों के वे बिलकुल विरोधी नहीं। आवश्यकता पड़ने पर वह अपनी भावनाओं को रोक नहीं पाते और व्यक्त कर ही डालते हैं। यद्यपि उन्होंने महात्माजी के विचारों की अक्सर आलोचना की थी, किन्तु उनके प्रति उनकी उत्कट भक्ति रही है, क्योंकि हृदय में उनका विश्वास था कि गांधीजी विश्व के महानतम् पुरुषों में से थे।

टंडनजी बड़े उदार और संवेदनशील हैं। यदि कोई उनके घर जाता है तो वह उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनते हैं तथा उसकी यथाशक्य सहायता करते हैं। बहुत से लोग उनका समय अनावश्यक नष्ट करते हैं। इससे उन्हें अपनी चिट्ठी पत्रियां तथा दूसरे कामों पर ध्यान देने के लिये पर्याप्त समय नहीं मिल पाता। लोग उनसे अपने बच्चों के विवाह, पारिवारिक बीमारियों, घरेलू समस्याओं और आर्थिक चिंताओं के विषय में बातें करते हैं।

यह यह सब बातें सुनते हैं तथा उन सब को योग्य सलाह देते हैं।

मेरा ख्याल है कि यदि इन वर्षों में सभी तरह के लोग उन्हें घेरे न रहते तो उन्हें और भी अधिक कार्य करने तथा अन्य ऐसे कार्यों को हाथ में लेने का अवसर मिलता जिनके लिये उनके जैसे निस्वार्थ नेताओं की आवश्यकता है। टंडनजी सामान्य अर्थों में आधुनिक नहीं हैं। वह लिखने पढ़ने का काम जल्दी नहीं निपटाते क्योंकि उनका लक्ष्य परिपूर्णता की प्राप्ति करना होता है। वह शुद्धता को भी बहुत महत्व देते हैं तथा कोई भी अशुद्ध शब्द वा ढीला ढाला वाक्य या लापरवाही से पंक्ति नहीं लिखते। एक बार डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने लिखा था—"उनमें दो त्रुटियां हैं जिनसे सबसे धैर्यवान मित्र भी उद्विग्न हो जाते हैं। पहली त्रुटि तो काम काज निपटाने का उनका ढीला ढाला तरीका है। बहुत संभव है कि उनके गंभीर विचार और प्रौढ़ चिन्तन का फल निर्दोष रचना रहता है, पर कभी कभी यह अनुभव होता है कि वह इस परिपूर्णता की प्राप्ति का बड़ा महंगा मूल्य चाहते हैं। दूसरी त्रुटि समय की अनियमितता है। उन्होंने अपने व्यवहार में समय की अनन्तता की मान्यता को दिशा दर्शक सिद्धांत मान लिया है।"

टंडनजी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में विश्वास करते हैं। वह इंजेक्शनों (दवा की सुइयों) में विश्वास नहीं करते। उन्होंने हरद्वार के कुम्भ मेला में जाते समय टीका लगवाने से इनकार कर दिया। वह उबाला हुआ भोजन तथा कच्ची शाक भाजी खाते हैं। नमक नहीं खाते। लंबे अर्से तक पानी नहीं पीते क्योंकि उन्हें इसकी इच्छा नहीं होती। वह साबुन का उपयोग नहीं करते क्योंकि उनका विश्वास है कि मिट्टी साबुन की अपेक्षा अधिक कीटाणुनाशक है।

टंडनजी उत्तर प्रदेश में कृषक आन्दोलन के जन्मदाता हैं। सब से पहले १९१० में उन्होंने किसान संघ की स्थापना की थी। इसके कार्य केवल इलाहाबाद जिले तक ही सीमित थे। सन् १९२१ में उन्होंने प्रादेशिक आधार पर किसानों का संगठन किया।

टंडनजी के जेल जीवन की कुछ झांकी दिये बिना ऊपर लिखा गया कोई भी शब्द-चित्र संपूर्ण नहीं हो सकता। सन् १९४२ में नैनी जेल में वह हमारे लिये शक्ति के प्रतीक थे। वहीं पर मैंने उनकी वास्तविक शक्ति का अनुभव किया था। जेल की उन धुंधली कोठरियों में हमारी बुझती हुई आत्माओं के लिए वह मधुर प्रकाश दीप के समान थे, और विषाद युक्त प्राणियों के बीच वह अकेले आनन्द बिखराने वाले व्यक्ति थे। वह ऐसे कैदियों के प्रति बड़े दयालु रहते थे जिनके दोष प्रमाणित हो चुके थे। एक बार जोखू नामक एक सज़ायाफ़्ता क़ैदी को गुड़ खाने की इच्छा हुई। टंडनजी के पास अपने हिस्से का थोड़ा सा गुड़ था। जब उनके साथी ने उन्हें जोखू की इच्छा के विषय में बताया, तो उन्होंने अपना गुड़ उसे देते हुए कहा कि, "जब कभी तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो मुझसे कह देना।" ३ मई १९४३ को हमारे बापूजी हमसे विलग हुए तो यह अवसर बस "जीवित प्राणियों की कब्र" अर्थात जेल में उनके सुखद संपर्क की समाप्ति का दिन था। उनके हृदय में भावनाओं का तूफान था, जो उनकी आंखों और चेहरे से स्पष्ट झांक रहा था। हममें से अधिकांश ने उनका चरण स्पर्श किया। हमें उनके विछोह का बड़ा दुख था। टंडनजी को इस बात का दुख था कि वह उन तमाम लोगों से बिछुड़ रहे थे, जिन्हें उन्होंने अक्सर पथ निर्देश दिया और सहायता प्रदान की थी। दूसरे और हमें इस बात का दुख था कि हमसे हमारा एक ऐसा प्रिय जन अलग हो रहा था, जो हमारे लिए शक्ति का आधार स्रोत था। ऐसा लगता था, मानो स्वयं प्रेरणा और संतोष हमसे बिलग हो रहे हों, लेकिन अकस्मात् हमने अनुभव किया कि हम सब एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं, इस लिए हमें चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। इस भावना ने हमें शक्ति दी और जब वह जेल के दरवाज़े की ओर बढ़े, हम उच्च स्वर में चिल्ला उठे, "टंडनजी की जय।"





एस० राधाकृष्णन्

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

डाक्टर राधाकृष्णन् से मिलने की इच्छा व्यक्त करते हुए क्रेमलिन में स्टालिन ने कहा था "मैं उस प्रोफ़ेसर से भेंट करना चाहता हूं, जो प्रतिदिन चौबीस घंटे अध्ययन करता है।" उस दार्शनिक ने मास्को में अपनी योग्यता और चातुर्य के कारण सोवियत अधिकारियों में इतना विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि वे लोग उन्हें रूस का सब से बड़ा मित्र मानने लगे थे। मास्को में एक सफल राजदूत होने का कारण यही था कि डाक्टर राधाकृष्णन् में विद्युत की तरह काम करने की शक्ति थी और वहां के वातावरण के अनुसार उन्होंने अपने आप को ढाल लिया था। उनका यह मिलन एक ऐतिहासिक महत्व रखता था। उनके राजनीतिक जीवन में यह एक महत्वपूर्ण बात थी। उन्हें भारत के उपराष्ट्रपति पद का भार सौंपा गया है, वह उसके लिए उपयुक्त हैं। राज्य-सभा का कार्य वह बड़े सम्मान और गरिमा के साथ पूरा करते हैं। सदस्यों के नीरस और उत्तेजक भाषणों को धैर्यपूर्वक सुनते हैं और संसदीय विधान के अनुसार निष्पक्ष दृष्टि से उसका विश्लेषण करते हैं। सभा के प्रत्येक सदस्य के साथ वह निष्पक्षता का बर्ताव करते हैं। राधाकृष्णन् अंतर्राष्ट्रीय जगत् में दार्शनिक के रूप में प्रख्यात हैं, परन्तु उनकी प्रशंसा धारावाहिक वक्तृताओं के कारण उन लोगों द्वारा भी होती है जो दर्शन की सूक्ष्मताओं को नहीं समझते। वह धर्म, दर्शन और राजनीति का ऐसा सरल और सुन्दर विश्लेषण करते हैं कि अल्प बुद्धि श्रोता भी उनकी बातें समझ लेते हैं तथा उनसे निकटता अनुभव करते हैं।

एक बार मैं उनका भाषण सुनने के लिए गया। सर पर श्वेत और स्वच्छ साफा बांधे और लम्बा कोट पहन ज्यों ही भवन के अन्दर उन्होंने

प्रवेश किया सारा भवन हर्ष-ध्वनि से गूंज उठा। उस महापुरुष के हाथ में कोई लिखा हुआ काग़ज़ नहीं था। उन्होंने अपना भाषण दिया। सारे श्रोतागण स्तब्ध हो गये। उनके आंग्ल भाषा के पाण्डित्य का दर्शन हुआ। उनमें शक्ति थी, उनका भाषण प्रभावोत्पादक था। अपने वक्तृता से उन्होंने सब को चकित कर दिया। उनकी भाषा की स्पष्टता, वाक्पटुता इतनी मोहक थी कि युवक वर्ग इस प्रेरक दार्शनिक के विचारों से अधिक उसके भाषण से प्रभावित हुआ।

यदि आप राधाकृष्णन् के उस भव्य शरीर को देखेंगे, तो यही कहेंगे कि सचमुच ऐसे लोग इस दुनिया में नाम कमाने, ख्याति पाने के लिए ही पैदा हुए हैं। उनकी चाल, उनके मस्तिष्क की तीव्रता और उनकी चमकती आंखें, उनकी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देती हैं। उनमें अहं का भाव छुआ तक नहीं। वह दयालु हैं। आप यदि अपनी कठिनाइयां उनके सम्मुख रखें तो वह आप को हर प्रकार की सलाह देंगे। उन्हें अपने अध्ययन का ज्ञान है पर गर्व नहीं है। वह मानव के आपसी सम्बन्ध पर विशेष ध्यान देते हैं। उनमें मनुष्यत्व की भावना कूट-कूट कर भरी है। उन्होंने एक बार कहा था कि "अच्छे और बुरे आदमी का भेद समझना कठिन नहीं। सिद्धान्ततः किसी के विचार को हम अच्छा बुरा कह सकते हैं किन्तु मनुष्य या स्त्री को हम बुरा-भला नहीं कह सकते क्योंकि हर एक मनुष्य या स्त्री में थोड़ी बहुत अच्छाई-बुराई, ऊंच-नीच, सच-झूठ विद्यमान रहता है......जीवन को प्रभावित करनेवाली उक्ति के लिए तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता होती है।"

घोर परिश्रम और तीक्ष्ण बुद्धि के कारण ही उन्हें अपने जीवन में सफलता मिली है। अपने कठिन परिश्रम और धैर्य से उन्होंने साधारण गुण को बड़े रूप में बदल दिया है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि एक दार्शनिक एक अच्छा राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ भी हो सकता है। दार्शनिक राजा भले ही अच्छे न हों किन्तु किसी न किसी दिन वह

दार्शनिक भारत का राष्ट्रपति होनेवाला है जो कि एक राजा की तरह ही है। लोग उन्हें दर्शन के पंडित के रूप में जानते हैं। बहुत कम ही लोग ऐसे होंगे जो यह जानते होंगे कि वह उपन्यास, कविताएं और नाटक भी पढ़ते हैं। यदि आप में और उनमें कोई मत भिन्नता हो जाय तो वह नाराज़ नहीं होंगे। वह आप के दृष्टि कोण को जानने का प्रयत्न करेंगे। वह आपके विचारों को समझते तो हैं ही साथ ही अपने विचारोंके बराबर ही आपके विचारों की भी व्याख्या करेंगे। सी० ई० एम० जोड ने एक बार लिखा था, "राधाकृष्णन् जिन दृष्टिकोणों से सहमत नहीं होते उसकी भी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि किसी को अपने विरोध पर विश्वास नहीं रहता।"

उनकी बहुत सी कहावतें और घोषणाएं अपने तर्क और चमक-दमक और भाषा की भव्यता के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गयी हैं। उनका निम्न-लिखित कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सतयुग के आने पर सभी मस्तक कठोर हो जायेंगे और सभी तकिये मुलायम।

पाश्चात्य सभ्यता की टीका करते हुए आपने कहा था :—हमें पक्षी की भांति हवा में उड़ने और मीन की भांति जल में तैरने की शिक्षा दी जाती है किन्तु हमें यह नहीं सिखाया जाता कि भूमि पर किस प्रकार रहना चाहिए।

हम लोग अब बड़े हो चले हैं। मानवता के लिए ईश्वर एक परिचारक की तरह है।

अज्ञानी होना मनुष्य का विशेषाधिकार नहीं, यह जानना कि वह अज्ञानी है उसका विशेषाधिकार है।

इतिहास का निर्माण करने में सैकड़ों वर्ष लग जाता है और किसी रीति को कायम करने में इतिहास को वर्षों लग जाते हैं।

राजनीति राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की कला नहीं है। मानव

कल्याण की वृद्धि करने के लिए कला का यह एक महत्व-पूर्ण भाव है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद उन्होंने कहा था—युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने के बाद शान्ति खोई जा चुकी है क्योंकि वही पुरुष और वही विचार और संस्थाएं जिन्होंने आपत्ति ढाई वह आज शान्ति पर शासन कर रही हैं।

जब आप दार्शनिकों द्वारा लिखी पुस्तकें पढ़ते हैं तो आप उनसे बहुत प्रभावित होते हैं, किन्तु जब आप उनके सम्पर्क में आते हैं तो आपको कुछ निराशा होती है। आप देखते हैं कि वे काल्पनिक और अव्यावहारिक होते हैं। हमेशा वे ख़यालों की दुनिया में ही रहा करते हैं। दुनिया की वास्तविकता से वे भिज्ञ नहीं रहते। किन्तु राधाकृष्णन् के साथ ऐसी बात नहीं है। वह बड़े व्यावहारिक आदमी हैं। विद्वानों के साथ रहने में उन्हें आनन्द मिलता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे साधारण शिक्षा प्राप्त व्यक्ति की उपेक्षा करते हों। हां, यह सत्य है कि वह सभी प्रकार के लोगों के साथ बहुत आराम नहीं महसूस करते हैं—और उन्हीं लोगों की संगति में रहते हैं जिनसे उनकी काफ़ी घनिष्टता हो। इस सम्बन्ध में सी० ई० एम० जोड ने एक घटना का ज़िक्र इस प्रकार किया है: "एच० जी० वेल्स के निवास-स्थान पर मैंने राधाकृष्णन् के साथ जब भोजन किया था वह दिन सरलता से नहीं भूल सकता। वेल्स, मैं और वैज्ञानिक विषयों के लेखक जे० डब्ल्यू० एन० सुल्लीवन वहां मौजूद थे। विज्ञान दर्शन, विश्व की स्थिति, पाश्चात्य सभ्यता का ह्रास संभव आदि विषयों पर बात चीत चल रही थी। राधाकृष्णन् बड़ी देर तक शान्त बैठे रहे। भोजन उन्होंने नहीं किया, केवल जल पी रहे थे। उनकी इस मौनता पर हम लोगों को आश्चर्य हुआ क्योंकि हम जानते थे कि वह अच्छे वक्ता और बातूनी हैं। यथा समय वह बोल दिया करते थे। जो कुछ वह कहते थे वह उपयुक्त होता था। ऐसे वाद-विवाद में उनका मौन रहना अधिक प्रभावोत्पादक और महत्वपूर्ण था।"

राधाकृष्णन् के पास एक मुनि की बुद्धि है और वह एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बदल लेने की उनकी शक्ति अद्भुत है। दार्शनिक होने के साथ ही उन्होंने विश्व को यह भी दिखा दिया कि वह एक सफल राजनीतिज्ञ भी हैं। वह एकान्त प्रेमी व्यक्ति हैं क्योंकि इससे ध्यान लगाने में उन्हें सरलता होती है, किन्तु राजनीतिज्ञों की संगति में बहस में भी वह कोई असुविधा अनुभव नहीं करते। किसी गांव में वह अकेलापन नहीं अनुभव करते। सभाओं के शोर-गुल से भी वह नहीं घबड़ाते। बुद्ध, रामानुज और हीगल के दर्शन में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। नेहरू और स्टालिन दोनों के राजनीतिक दर्शन को वह भली भांति समझते हैं। मुझे विश्वास है कि भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के अध्यक्ष के रूप में परम्पराएं कायम करने में वह समर्थ होंगे। उनका व्यक्तित्व बहुत बड़ा है, भविष्य में हमें उन पर पूरा भरोसा है।



गोविन्दवल्लभ पंत

पंडित गोविन्दवल्लभ पंत हमारे देश की विभू तियों में से हैं। बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जो वाग्मिता में उनकी बराबरी कर सकें। उत्तर प्रदेश में बगैर पंत जी के धारा सभा की कल्पना करना कठिन था। वह दुष्यन्त रहित शकुन्तला नाटक की तरह होता। पर कुछ अनिवार्य कारणों से उन्हें केन्द्रीय सरकार में गृह विभाग मंत्री का पद संभालना पड़ा। अक्सर देखा गया है कि जो लोग वैधानिक बारीकियों में व्यस्त रहते हैं, वे अपना क्रान्तिपूर्ण उत्साह खो बैठते हैं और किसी भी प्रकार के संघर्ष के प्रति उदासीन हो जाते हैं। परन्तु पंतजी के साथ यह बात नहीं है। मुझे कोई भी ऐसा अवसर विदित नहीं है जब पंतजी ने किसी आन्दोलन में इच्छा-पूर्वक भाग न लिया हो या जिसका विरोध किया हो। उन्हें वैधानिकता की उपादेयता का पूरा ज्ञान है, पर वह यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि एक मंज़िल ऐसी आती है जब वैधानिकता बेकार पड़ जाती है और क्रान्ति मार्ग ही एकमात्र अवलम्बन रह जाता है। विधान सूत्र की बारी-कियों को सुलझाते हुए तथा विपक्षी को तर्क और वाग्मिता से पराभूत करते हुए पंतजी को देखने में एक आनन्दानुभव होता है। अपने विपक्षी का खंडन करते समय वह मुश्किल से किसी कठोर शब्द का प्रयोग करते हैं, उसकी हँसी उड़ाने की भी कोशिश नहीं करते, बल्कि तर्क और युक्ति के बोझ से ही अपना पलड़ा भारी कर देते हैं।

बरेली जेल से छूटने के बाद उन्होंने अखबारों में पढ़ा कि उनके स्नेह बन्धु जवाहरलाल नेहरू और आचार्य नरेन्द्रदेवजी को कितनी यातना भुगतनी पड़ी। हैलेट सरकार के भारतीय नेताओं के प्रति ऐसे व्यवहार ने उनके हृदय को चोट पहुंचाई और उन्होंने एक प्रभावशाली



गोविन्दवल्लभ पंत

वक्तव्य में सरकार को उसके दुष्कर्मों के लिए लताड़ा। यह आवाज़ अपने सहकारियों के साथ किए गए अन्याय और एक तानाशाही सरकार द्वारा थोपी गयी बेइज्ज़ती के ख़िलाफ उभड़ते हुए सात्विक क्रोध की थी। जब एक बार पंतजी भड़क जाते हैं तो वह महान ओजस्वी वक्तृता देते हैं और उनकी लेखनी से भव्य भाषा निःसृत होती है।

३ जून सन् १९४२ को मैं आचार्य कृपालानी के साथ नैनीताल गया। हम लोग अपने घर जाने के लिए कार से उतरे ही थे कि हमने सुना कि पंतजी बीमार हैं। अपने घर जाने के पूर्व हम पंतजी के मकान गये और तुरन्त उनके कमरे में बुला लिए गये। यह शायद पहला अवसर था जब मैंने उनको इतने नज़दीक देखा। लम्बे विशालकाय प्रभावोत्पादक डील-डौल तथा बड़ी आंखों वाले पंतजी एक बड़ी सी चारपाई पर लेटे हुए किताब पढ़ रहे थे। ज्योंही उन्होंने हमको देखा वह अपनी खाट पर बैठ गए और हमारी यात्रा तथा दूसरी बातोंके बारे में निरंतर प्रश्न पूछते ही गए। उन्होंने मुश्किल से हमें मौका दिया कि हम पूछ सकें कि उन की अपनी तबियत कैसी है। कुछ ही समय के अंदर हमको उनकी प्रख्यात आतिथ्य-सत्कार का अनुभव हुआ जब हमारा प्रचुर जलपान से स्वागत हुआ। मैंने कई लोगों से सुना था कि दिन-दिन भर पंतजी के ऊपर मुलाकातियों की चढ़ाई जारी रहती है और उन सब लोगों का सत्कार वह स्वंय करते हैं। वह इस बात की बड़ी कोशिश करते हैं कि मेहमान और मुलाकाती लोग यह महसूस न करें कि पन्तजी उनकी किसी तरह की अवज्ञा कर रहे हैं। १९४५ के जून में पंडित जवाहरलाल नेहरू अल्मोड़ा जेल से छूटे तो मैदानों से कई लोग उनका स्वागत करने के लिए नैनीताल जा पहुंचे और उनमें से अधिकांश सीधे पन्तजी के पास पहुंचे और उनके घर में डेरा डाल दिया मानों उनका कोई पुश्तैनी अधिकार पंतजी और उनकी ज़ायदाद पर था। पंत जी उस समय अस्वस्थ थे किन्तु मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि अपनी रुग्ण-

शैय्या पर से ही उन्होंने हर व्यक्ति के आराम और सहूलियत की देख भाल की। दिन में कई बार वह अपने मेहमानों के बारे में पूछताछ करते थे और अपने मकान को उन्होंने स्टेशन का मुसाफिरखाना बना दिया। पंतजी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि आदमियों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसे वह खूब समझते हैं। वह मानो वैज्ञानिक रीति से लोगों का सामना करते हैं और उनके साथ व्यवहार में बड़ा धीरज दिखलाते हैं। अगर आप गुस्सा हों और उसे आप प्रकट करने के लिए पन्तजी के पास जायें तो मुझे विश्वास है कि जब आप उनसे मिलेंगे तो क्रोध लुप्त हो जायगा। वह आपको अपनी बात कहने का यथोचित अवसर देते हैं, और धैर्यपूर्वक आपकी बात सुनते हैं। पर आप उनके मंतव्य को तब तक नहीं हिला सकते जब तक उनकी सब शंकाओं का पूरा निवारण न हो जाय। मालूम तो ऐसा पड़ता है जैसे कि वह आपकी सब बात सुन रहे हों, पर आप जो कुछ कहते हैं उसका अधिकांश वह नहीं सुनते। लोगों की यह आदत होती है कि वे फिजूल की बातें करते हैं। पर पंतजी के पास यह सब सुनने के लिए समय नहीं है। आप कितना ही बोलते जाइए, पर वह उतना ही सुनेंगे जितना सारपूर्ण है और बाकी निस्सार हिस्से की तरफ वह कोई ध्यान नहीं देंगे। एक किस्सा मशहूर है कि एक कांग्रेसी उनसे बेहद नाराज़ होकर एक बार उनके पास उन्हीं की शिकायत करने के लिए गया। वह व्यक्ति लगातार करीब एक घंटे तक बड़ी गर्मी के साथ उनके ख़िलाफ जहर उगलता गया, पर अंत में थक कर चुप हो रहा। पंतजी ने शान्तिपूर्वक पूछा—"क्या आपको कुछ और कहना है ?" पंतजी के धैर्य, नम्रता और सहनशीलता का उस पर बड़ा असर पड़ा। वह आदमी शिकायत करने के लिए गया था और प्रशंसा करते हुए लौटा। कहा जाता है कि तब से वह पन्तजी के अन्यतम प्रशंसकों में है। पन्तजी के इस राम बाण के कई शिकार हो चुके हैं। पन्तजी पार्वतीय ब्राह्मणों के एक कुलीन घराने में पैदा हुए। अपने बचपन से ही पन्तजी बड़े मेहनती मशहूर थे।

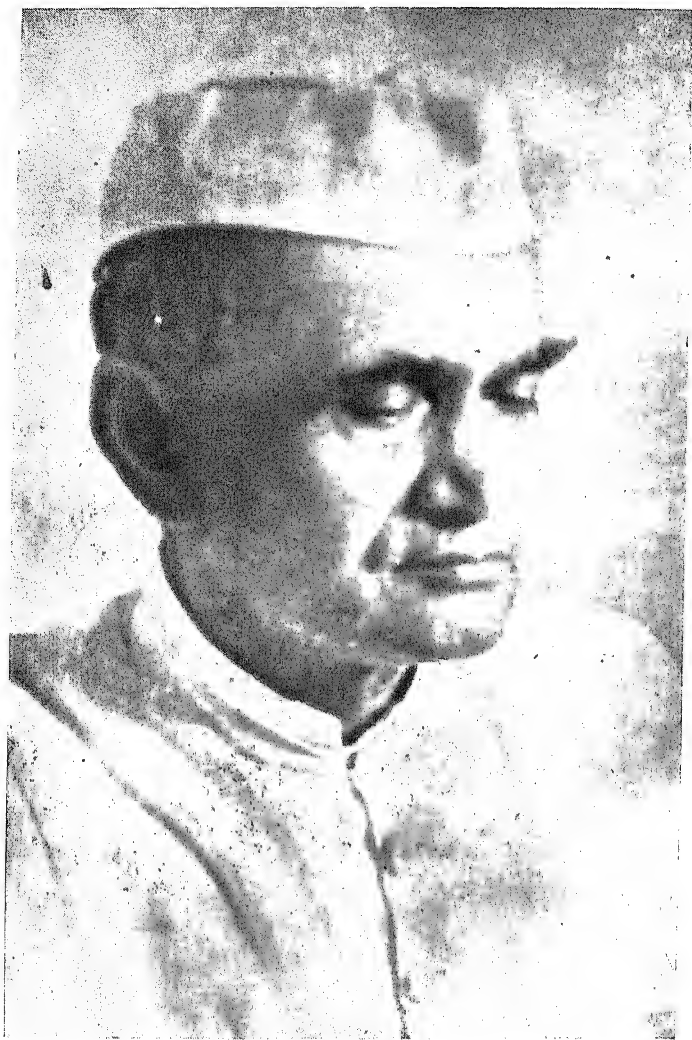
सन् १६०५ में उन्होंने इलाहाबाद म्योर सेंट्रल कालेज में नाम लिखाया और बड़ा तेजपूर्ण विद्यार्थी जीवन बिताया। जब उनके साथी गप्पें लगाया करते थे तो वह अपने कमरे में बैठे हुए आधीरात तक पढ़ा करते थे। अपने सहपाठियों के बीच पन्तजी नेतृत्व करते थे और सहकर्मियों को उत्साह प्रदान करते थे। उनकी हिम्मत, ईमानदारी और निर्भीकता का उनके साथियों पर बड़ा असर पड़ा और वे कहा करते थे कि पन्त एक दिन बड़ा आदमी बन कर रहेगा। पन्तजी ने उनकी आशा पूरी कर दी है। पन्तजी की वकालत नैनीताल में खूब धड़ल्ले से चलती थी, पर धीरे-धीरे राजनीति ने वकालत पर फतह पाई और उन्होंने वकालत से छुट्टी ले ली। अपने काम करने की लगन से उन्होंने दूसरे कार्यकर्ताओं पर बड़ा प्रभाव डाला। सन् १६१६ में वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गए और अब तक हैं। विधान वक्ता के रूप में उन्होंने अपनी योग्यता दिखलाई और सन् १६३७ में संयुक्त प्रांत की धारा सभा में कांग्रेस पार्टी के नेता चुने गए। उन्होंने अपना मत्रिमंडल बनाया और स्वयं मुख्य मंत्री के रूप में काम किया।

मुख्य मंत्रित्व के कठिन भार से उनकी तन्दुरुस्ती खराब हो गई और सन् ४२ में जब वह पकड़े गए तो उनका शरीर जर्जर हो रहा था। अहमदनगर किले के बंदीगृह ने उनका स्वास्थ्य और भी बिगाड़ दिया। सन् १६४७ और सन् १६५१ में राज्यवासियों ने उनको फिर मुख्य मंत्री चुना।

पन्तजी कई बार जेल गए और कारावास के कठोर जीवन के चिन्ह उनके चेहरे पर अंकित हैं। उनकी थोड़ी झुकी हुई कमर तानाशाही की उन मारों की दुःखद स्मृति दिला देती है जो उन पर लखनऊ में सन् १६२८ में साइमन कमीशन को काला झंडा दिखाते समय पड़ी थी। पंडित नेहरू ने अपनी आत्मकथा में इस घटना का वर्णन करते हुए कहा है, "परंतु भाग्यवश मेरे किसी अंग में बड़ी चोट नहीं आई। हमारे कई साथी कम

भाग्यशाली थे और बुरी तरह घायल हो गए। गोविन्दवल्लभ पन्त, जो मेरे पास ही खड़े थे, खासा अच्छा निशाना बने हुए थे, क्योंकि वह ६ फ़ीट और कुछ इंच ऊंचे थे, और तब की खाई हुई चोट एक ऐसी तकलीफ छोड़ गई जिसने उनकी कमर को लम्बे अर्से तक सीधा न होने दिया और कर्मठ जीवन में बाधा पहुंचाई। असल मार पीट ज्यादातर यूरोपीय सार्जेन्टों ने की।"

पन्तजी औषधियों का नियमित रूप से सेवन करते हैं। वह उनपर अधिक निर्भर रहते हैं। कदाचित् वह उनके लिए अपरिहार्य भी है तथा उन्हें अपना कार्य करने में सहायता पहुंचाती हैं। वह बड़े कार्यशील तथा कर्तव्यपरायण व्यक्ति हैं। उन्होंने कांग्रेस संगठन में बड़ी एकता रखी। यदि उसमें कभी-कभी मतभेद हुआ है तो उसका कारण कांग्रेसजनों की सत्तालोलुपता और लिप्सा है। अब भी वह दिल्ली में विभिन्न राज्यों के मंत्रिमंडलों के आंतरिक झगड़े सुलझाते रहते हैं। वह राज्य कांग्रेस दल तथा देश के लिए एक आधार स्तम्भ हैं। उनकी ईमानदारी संदेह के परे रही है तथा उनकी योग्यता को सभी ने मान्यता प्रदान की है।



कैलाशनाथ काटजू

कैलासनाथ काटजू

कैलासनाथ काटजू कटु निराशाओं से अधिक टक्कर खाये बिना वकील के रूप में प्रसिद्धि पायी। वह उन यातनाओं को भोगे बिना जिनसे हृदय में कटुता उत्पन्न हो जाती है, कांग्रेस नेता बन गये। जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि वह उड़ीसा के राज्यपाल नियुक्त किये गये हैं तो मैंने उनसे कहा कि "आपको आध्यात्मिक बीहड़ता में राजनीतिक संन्यास दे दिया गया है।" उन्होंने सरलता से कहा—"तरुण, तुम यह नहीं जानते कि मैं यहां वहां सेवा करने का चुनाव नहीं करता। जब आप किसी संघटन में हों तो आपको बिना किसी हिचकिचाहट के किसी भी पद पर काम करने के लिये तैयार रहना चाहिये। मुझसे उड़ीसा जाने के लिये कहा गया है और मैं उड़ीसा जा रहा हूं।"

वह महान अनुशासनशील हैं। उन्हें इधर उधर की बातों तथा व्यर्थ के विवादों में अरुचि है। वह अनुशासनहीन लोगों को नहीं चाहते। जब कोई उनसे सीधी और साफ तर्कपूर्ण तथा विचारपूर्ण बातें करता है तब तो आप धैर्यपूर्वक बातें सुनते हैं परन्तु यदि कोई गोलमाल बातें करता है या व्यर्थ में दांत किटाकिट करता है तो वह अपना धीरज खो बैठते हैं। वकील के रूप में उन्होंने अनेक मुवक्किलों को अप्रसन्न कर दिया क्योंकि वह उनकी व्यर्थ की और निरर्थक बातें नहीं सुनना चाहते थे।

एक बार एक मुवक्किल बहुत से काग़ज़ पत्र लेकर उनके पास आया तथा बातें करने लगा। डाक्टर काटजू ने कहा कि मैं काग़ज़ पत्रों से तथ्य जान लूंगा अतएव उसे चुप रहना चाहिये। परन्तु मुवक्किल बकवास करता ही गया। इस पर डाक्टर काटजू ने समाचारपत्र उठा लिया और

उसे पढ़ने लगे। मुवक्किल को अपने वकील के इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार से बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह उन्हें फीस के रूप में अच्छी खासी रकम देनेवाला था। परन्तु वह उन्हें छोड़ नहीं सका क्योंकि उन दिनों डाक्टर काटजू "मुकदमे जीतनेवाले' माने जाते थे और उसे डर था कि कहीं विरोधी पक्षवाले उन्हें अपना मुकदमा न सौंप दें। जब वह चला गया तो डाक्टर काटजू ने मुझसे कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि लोग मेरे पास क्यों आते हैं। मैं तुम्हें बताता हूं कि मैं कानून को पर्याप्त रूप में नहीं जानता।" मैंने आश्चर्य से प्रश्न किया, "आप पर्याप्त रूप में कानून नहीं जानते ?" उन्होंने कहा, "नहीं, तुम इस बात पर विश्वास करो।" उन्हें कानून का भले ही पर्याप्त ज्ञान न हो पर वह तथ्यों को बड़े सिलसिले से प्रस्तुत करते थे तथा अपने पक्ष का ज़ोरदार समर्थन करते थे। इससे भी अधिक गुण यह था कि वह अपने मुकदमों की अपेक्षा अपने न्यायाधीशों को अधिक अच्छी तरह से समझते थे और इस का बड़ा प्रभाव पड़ता था।

मुझे डाक्टर काटजू को निकट से समझने का अवसर जेल में मिला। वह सन् १९४२ में नैनी जेल में बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन और स्वर्गीय रणजीत सीताराम पंडित के साथ बन्द थे। वह स्वस्थ नहीं थे। पर उनकी हालत को खराब करनेवाला सबसे बड़ा कारण "कार्यशून्यता" थी। वह बड़े परिश्रमी, प्रखर विचारक तथा सजग व्यक्ति हैं। उनमें असाधारण मानसिक चेतना और ग्राह्यशक्ति है। उन्होंने अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। नैनी सेन्ट्रल जेल की कोठरी में एक पुस्तक लिखी है जो आत्म-कथा सी प्रतीत होती है। यह अब तक प्रकाशित नहीं हुई है तथा इसकी पाण्डुलिपि को कुछ ही मित्रों को पढ़ने का सुयोग मिला है। वह जेल में अच्छे साथी थे। अपने सहबंदियों को अपना साथी मानते थे तथा उनके साथ समता भाव सहित रहते थे। उनके दुख-सुख में सम्मिलित रहते थे। उनके साथ ताश खेलते तथा दूसरी प्रवृतियों में भाग लेते थे। एक बंदी के रूप में डाक्टर काटजू सौम्य और दयालु थे, वकील के रूप में

वह मुकदमा जीतनेवाले तथा कट्टर प्रतिद्वंद्वी थे। राज्यपाल के रूप में वह राज्य-श्री-सम्पन्न और दयालु थे। मंत्री के रूप में वह कार्यकुशल और कार्यक्षम हैं तथा मित्र के रूप में स्नेहयुक्त और सहायक हैं।

सफलता अधिकतर चकमेबाज़ होती; परन्तु डाक्टर काटजू के मामले यह एक तरह से वैज्ञानिक ढंग से तथा क्रमानुसार प्राप्त हुई। उन्हें न तो अपने संबंध में कोई भ्रम था और न दूसरों के सम्बन्ध में कोई भ्रांत धारणा थी। कठिन परिश्रम और कार्यपरायणता से उन्होंने देश में उचित स्थान प्राप्त कर लिया है। वह दलगत राजनीति तथा संकीर्ण विचारों से सदैव दूर रहते हैं। उन्होंने कभी दलबंदी में भाग नहीं लिया। वह किसी गुट्ट में सम्मिलित नहीं हुए। उन्होंने स्वार्थवश किसी का समर्थन नहीं किया। व्यक्तिगत द्वेष या शत्रुतावश किसी का विरोध नहीं किया। सदैव स्पष्ट-वादिता के साथ अपना मत प्रकाशित किया है तथा जिस कार्य को उचित तथा ठीक समझा है, उसे किया है। इसका परिणाम यह है कि उत्तर प्रदेश में डाक्टर काटजू के प्रशंसक अधिक हैं पर अनुगमन करनेवाले कम हैं। वह स्वयं ही अपना अनुगमन करते हैं।

डाक्टर काटजू का जन्म १७ जून सन् १८८७ में जाबरा (मध्य-भारत) में हुआ था। अपने माता पिता की आर्थिक स्थिति के कारण आपकी शिक्षा के मार्ग में कठिनाइयां थीं। पर शिक्षा में आपकी लगन को देखकर आपके माता पिता ने आपकी यथाशक्ति सहायता की। काटजू को अपने माता पिता की आर्थिक सीमाओं का सदैव ध्यान रहता था। एक बार उन्होंने लिखा,—"मेरे माता-पिता ने मुझे लाहौर और इलाहाबाद भेजकर वास्तव में स्वयं बड़े कष्ट झेले।" उन्होंने तेरह वर्ष की अवस्था में मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९०५ में बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। वह विज्ञान के डाक्टर होना चाहते थे परन्तु कानून के डाक्टर हो गये। पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० उत्तीर्ण करने के बाद वह इलाहाबाद आ गये तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम०

ए० और एल०एल० बी० की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने आपको सम्मान स्वरूप कानून के डाक्टर की पदवी से विभूषित किया। कहा जाता है कि युवक काटजू अपने परिवार के आर्थिक भार को हलका करने के लिये एक रियासत में नौकरी करना चाहते थे, पर उन्हें नौकरी नहीं मिली। इससे उन्हें अवश्य ही निराशा हुई होगी पर बाद में उन्होंने अनुभव किया होगा कि वह असफलता उन्हें बड़ी सौभाग्यशाली सिद्ध हुई। यदि वह उन दिनों रियासती नौकरी में उलझ गये होते तो इससे उनका भविष्य बिगड़ गया होता। वह सन् १९०८ में कानपुर आये तथा वहां पंडित पृथ्वीनाथ चक के संरक्षण में वकालत करने लगे। आज भी वह इस पंडित के प्रति कृतज्ञता और सम्मान का भाव प्रकट करते हैं। सर तेज बहादुर सप्रू ने भी आपके प्रति स्नेहपूर्ण तथा कृपापूर्ण व्यवहार किया। आप उनके भी ऋणी हैं। सन् १९०४ में वह इलाहाबाद हाईकोर्ट के वकील हो गये। अभी उनकी वकालत के आरम्भिक दिन ही थे परन्तु उन्होंने अपने मन में संकल्प किया कि मैं किसी दिन हाईकोर्ट का उच्च कोटि का वकील बनूंगा। यह संकल्प उन्होंने अपने मन में ही किया था तथा इसकी पूर्ति की। उन्हें कानूनी काम में बड़ी रुचि है। आश्चर्य नहीं कि अब भी वह कभी कभी मुकदमों और अदालतों का सपना देखते हों।

डाक्टर काटजू मनोरंजक संभाषणकर्त्ता हैं। वह बड़े विनोदप्रिय हैं। वह दूसरों की चुटकी लेते हैं और जब दूसरे उनकी चुटकी लेते हैं तब इसका भी आनन्द लेते हैं। जब वह अनुभव करते हैं कि उनके श्रोता बुद्धिमान हैं तथा उनकी बातें समझते हैं और उनकी बातों को बिना समझे सिर नहीं हिलाते तो उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक रहती है। वह दूसरों को समझाना चाहते हैं और स्वयं नहीं समझना चाहते। अच्छा तर्क सुनकर वह आनन्दित होते हैं। वह मधुर सम्भाषणकर्त्ता नहीं हैं, पर कर्णकटु भी नहीं हैं। वह समझते हैं, विवाद करते हैं, समर्थन करते हैं

परन्तु झड़ी नहीं लगाते। लेखक के रूप में वह खूब लिखते हैं। यदि वह कोई लेख लिखने के लिये राज़ी हो जांय तो आपको यथा समय अच्छा लेख अवश्य ही मिल जायगा। उन्हें लम्बे लेख लिखने में रुचि नहीं है।

डाक्टर काटजू वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ हैं पर उनमें युवकों की सी शक्ति तथा आन्दोलनकारियों जैसा उत्साह है। एक राज्य में राज्यपाल का पद पाना उनके लिये परम पद नहीं था। वह मानो राकेट से निकल कर भारतसरकार के गृह विभाग मंत्री पद पर आसीन हो गये। बाद में उन्हें सुरक्षा विभाग का कार्य भार सम्हालना पड़ा। उनके दृष्टिकोण में कुछ कड़ापन है। इससे उन्हें गृहमंत्री के रूप में अनुकूल योग प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने नज़रबंदी कानून का जिस कट्टरता से तथा ज़ोरशोर के साथ समर्थन किया इससे उनके मित्रों और विरोधियों दोनों को धक्का लगा।

डाक्टर काटजू विश्वासी और स्नेही मित्र हैं। उनमें एकांगी विचारों की कुछ प्रवृति है परन्तु वह दूसरों के दृष्टिकोण को समझने की भी यथा-शक्ति चेष्टा करते हैं। अपनी सफलताओं पर उन्हें गर्व नहीं है परन्तु वह अपनी मान्यता पर आश्चर्यजनक रूप से अटल रहते हैं।



बालकृष्ण केसकर

डाक्टर बालकृष्ण केसकर की खोज पंडित जवाहरलाल नेहरू ने की है। एक दिन प्रातःकाल केसकर जागे और उन्हें मालूम हुआ कि वह विख्यात हो गये हैं। सन् १९४६ में पंडित नेहरू ने उन्हें कांग्रेस का महामंत्री नामांकित कर के सब को आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने नेहरू के विश्वास को सार्थक किया और अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया। इन दिनों वह भारत सरकार के सूचना और प्रसार विभाग के मंत्री हैं। उन्होंने आलइंडिया रेडियो को सशक्त बनाने का उत्कृष्ट कार्य किया है।

केसकर बड़े सरल प्रकृति व्यक्ति हैं। वह राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मामलों के विचारशील विद्यार्थी हैं। वह संसार के प्रायः सभी देशों की यात्रा कर चुके हैं। वह फ्रांस में लगभग सात वर्ष रहे। कहा जाता है कि वह फ्रांसीसी भाषा कई फ्रांसीसियों से भी अच्छी बोलते हैं। वह जर्मनी में भी रहे हैं। सन् १९४१ के सत्याग्रह आन्दोलन में सरकार ने उन्हें रिहा करने से इनकार कर दिया क्योंकि उसका ख्याल था कि उनका जर्मनों से कुछ संपर्क था। उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विदेश मंत्री के रूप में कार्य किया है। सन् १९४१-४२ में उन्होंने अच्छा राजनीतिक कार्य किया तथा बड़ी कठिनाइयां झेलीं। वह स्वभाव से शर्मीले तथा प्रचार की चकाचौंध से दूर रहते हैं। सन् १९४१ में एक रात सन्नाटे में पुलिस उन्हें मेरे घर पर गिरफ्तार करने आयी। मैंने पुलिस अधिकारियों से कहा कि यह तो बड़ी हास्यास्पद बात है कि आप ऐसे असुविधाजनक समय में उन्हें गिरफ्तार करने आये हैं जब कि हम दोनों दिन में कई बार पुलिस थाने के सामने से गुजरे हैं। पुलिस इन्स्पेक्टर ने क्षमा याचना करते



बालकृष्ण केसकर

हुए कहा, "हम में से कोई उन्हें पहिचानता नहीं है। रात में ग्यारह बजे हमें पता लगा कि वह आपके पास ठहरे हुए हैं।"

केसकर ने १६ वर्ष की अवस्था में स्कूल छोड़ दिया तथा काशी विद्यापीठ में सम्मिलित हो गये। बाद में वह सन् १६२७ से १६३० तक वहां अध्यापक रहे। वह आचार्य नरेन्द्रदेव के पुराने शिष्य हैं। उन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। जब वह चौदह वर्ष के ही थे तभी कांग्रेस में सम्मिलित हो गये थे। उन्होंने सन् १६३० और १६३३ के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। सन् १६४१ में वह उत्तर प्रदेश में आन्दोलन के संचालक थे। सन् १६४२ में वह विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित रखने के लिए जगह जगह गुप्त रूप से घूमते रहे। उन भूमिगत दिनों में मेरी केसकर से दो बार भेंट हुई। अनेक कठिनाइयों के बावजूद वह न तो भयभीत थे और न निराश। वह साहसपूर्वक कार्यरत थे। उनकी भूमिगत प्रवृत्तियों के बारे में ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकता क्योंकि मैं उन दिनों जेल में था। प्रकृतिवश डाक्टर अपने काम और सफलताओं के बारे में बढ़ा चढ़ा कर बातें नहीं करते। वह अपने भूमिगत जीवन की रोमांचक घटनाओं का भी उल्लेख नहीं करते।

केसकर व्यक्तिगत या राजनीतिक महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं। कांग्रेस के महामंत्री होने के कुछ सप्ताह पूर्व मैं उनसे दिल्ली में मिला था। वह सामान्य योजना युक्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें ज्ञात ही नहीं था कि कुछ सप्ताह बाद ही वह कांग्रस के महत्वपूर्ण पद पर आसीन हो जायंगे। उन्होंने इस पद की आकांक्षा नहीं की। यह पद ही उनके पास पहुंच गया। नेहरू को उनकी योग्यता में विश्वास था तथा वह उनके गुण की जांच करना चाहते थे। उन्होंने उन्हें एक अवसर दिया, और केसकर ने इस अवसर के अनुरूप कार्य किया।

यदि आप केसकर से मिलें तो उनमें कोई दिखावा और आडम्बर

नहीं पायेंगे। उनमें घमंड या गर्व नहीं है। वह मार्क्सवाद को समझते हैं पर कम्यूनिस्टों की तरह नीरस शब्द जाल फैलाने और मार्क्सवादी ढकोसले से दूर रहते हैं। वह सुलेखक हैं तथा उनके लेख राजनीतिक शब्दाडम्बर से शून्य रहते हैं। उनके लेखों में उनके विचारशील मस्तिष्क की छाप रहती है।

पहले केसकर सुख सुविधाओं के प्रति उदासीन रहते थे, पर अब यदि ये उन्हें उनकी इच्छानुसार प्राप्त हो जायं तो उन्हें पसंद करते हैं। यद्यपि उनका दृष्टिकोण मूलतः पूर्वीय है, तथापि वह अनेक पश्चिमी चीज़ों के प्रशंसक हैं। विदेशों में दीर्घकालीन वास का अनेक भारतीयों पर कुप्रभाव पड़ा है परन्तु केसकर इससे मुक्त रहे हैं। काशी विद्यापीठ का स्वर उनमें अब भी सुनाई पड़ता है।

केसकर प्रभावशाली वक्ता नहीं हैं। उनमें उन नाटकीय वक्ताओं के गुणों का अभाव है जिनसे श्रोताओं की हर्षध्वनि प्राप्त कर ली जाती है। वह उस प्रचलित करतल ध्वनि के प्रति उदासीन हैं जो कई राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क को कुछ विकृत कर चुकी है। डाक्टर केसकर को माला अर्पित तथा अभिनंदन किए जाते समय देखिए, वह युवती के समान शरमाते और असमंजस में पड़ जाते हैं।

केसकर अविवाहित हैं। अनेक लोगों का खयाल है कि वह कुछ एकाकी अनुभव करते होंगे। पर वह अपने जीवन की सबसे बड़ी सफलता इस बात में अनुभव करते हैं कि विवाह बन्धन से बच गए। वह अधिकतर कहते हैं "यदि मेरे पत्नी होती तो मैं कैसे इतना घूम फिर सकता था ?" इसमें संदेह नहीं कि जब वह सन् १९४२ के तूफान के अनाथ थे तब यह अच्छा ही था कि वह पारिवारिक चिंताओं से मुक्त थे। वह शास्त्रीय संगीत के इतने प्रेमी हैं कि अच्छा कार्यक्रम सुनने के लिए मीलों पैदल जा सकते हैं।

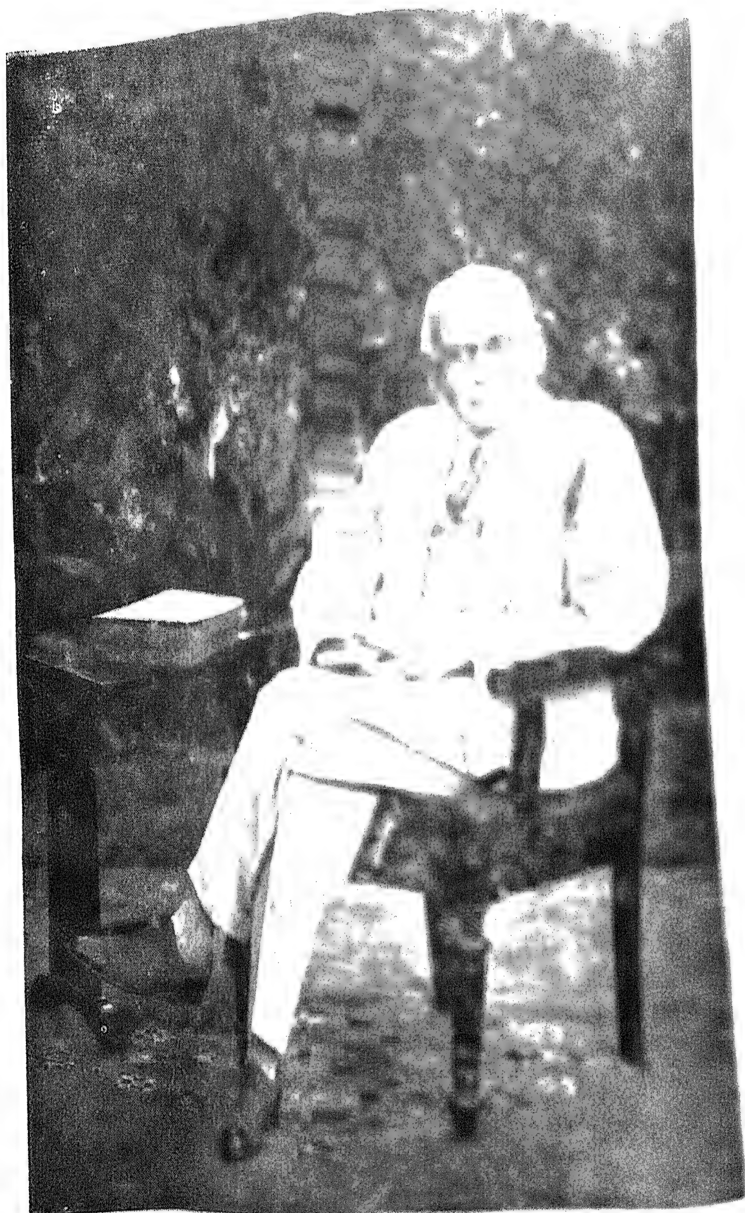
केसकर यह कभी अनुभव नहीं करते कि मंत्री होना बहुत बड़ी बात है।

यद्यपि वह इस समय केन्द्रीय सरकार के मंत्री हैं, परंतु यदि वह इस पद से मुक्त हो जायं तो भी दुखी नहीं होंगे। वह सामाजिक प्रतिष्ठाओं के प्रति उदासीन हैं। उनमें कुछ एकांतप्रियता है। कांग्रेस के बाहर उनके अनेक प्रिय मित्र हैं। वह अपने व्यक्तिगत संबंधों में राजनीतिक मत भिन्नता को आड़े नहीं आने देते वह निम्नकोटि की प्रतिद्वंद्विताओं तथा ईर्षाओं से मुक्त हैं। अपने ही ज्ञान के प्रकाश में कार्य करते हैं तथा कर्त्तव्य पालन को ही पुरस्कार मानते हैं। वह पदों की आकांक्षा नहीं करते। पद यथा समय उनके पास पहुंच जाते हैं। सत्ता से वह गर्वीले और दीवाने नहीं हुए हैं। किसी के प्रति वह कड़े शब्दों का उपयोग नहीं करते। स्वभावत: संकोचशील और विनम्र हैं। वह जानते हैं कि सत्ता और राजनीति वायवीय हैं जब कि प्रेम, मित्रता और साहचर्य का जीवन में स्थायी स्थान है। उनका सर्वश्रेष्ठ गुण यह है कि मैत्री धर्म का अच्छा निर्वाह करते हैं।



तेज बहादुर सप्रू

सर तेज बहादुर सप्रू का जन्म दिल्ली के एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित राधाकृष्ण था। वह संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में एक प्रशासकीय पद पर थे। सरकार ने उन्हें एक जागीर भी दी थी। उनके पिता का नाम अम्बिका प्रसाद था। वह पारिवारिक सम्पत्ति की देखरेख करते थे। सर तेज का जन्म अलीगढ़ में सन् १८७५ में हुआ। उन्होंने सन् १८६० में चौदह वर्ष की अवस्था में मेट्रिक की परीक्षा स्थानीय हाई स्कूल से उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने आगरा कालिज में प्रवेश किया। यहां से सन् १८६२ में इन्टरमीजिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १८६४ में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १८६५ में उन्होंने अंग्रेजी में एम० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। इसी वर्ष कानून की परीक्षा एलएल० बी० भी उत्तीर्ण की। मुरादाबाद में वकालत का प्रारम्भिक अनुभव प्राप्त कर अक्तूबर १८६८ से इलाहाबाद हाई कोर्ट में वकालत करने लगे। आरम्भ में उन्हें मुकदमे नहीं मिलते थे, पर धीरेधीरे मुकदमे मिलने लगे। उसके बाद से पचास वर्ष तक उन्होंने सफल वकालत की। जिन दिनों उन्हें मुकदमे नहीं मिलते थे उन दिनों वह कानून का बारीकी के साथ अध्ययन करते थे। उन्हें सन् १६२३ में सर की पदवी मिली। उन्होंने अपने सबल प्रतिद्वंद्वियों से अनेक जोरदार कानूनी लड़ाइयां लड़ीं और अधिकांश मामलों में विजयी हुए। यह स्मरणीय है कि वह सन् १६१२ में लखनऊ चीफ कोर्ट में प्रसिद्ध सर रासबिहारी घोष के खिलाफ़ खड़े हुए तथा समस्त प्रांत में अपनी बुद्धिमत्ता और योग्यता के लिए प्रशंसित हुए। वह भारत की सभी हाई कोर्टों (उच्च न्यायालयों) में कभी न कभी



नेमबहादुर मनु

मुकदमे कर चुके हैं। वकील के रूप में उनकी इतनी ख्याति बढ़ी कि कहा जाता है कि कुछ प्रांतों के अधिकारी वर्ग उच्च न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में उनसे सलाह लिया करते थे। सन् १९१३ में वह प्रांतीय धारा सभा के सदस्य चुने गए। उसी वर्ष उन्होंने राज्य समाज सम्मेलन (प्राविंसियल सोशल कांफ्रेंस) की अध्यक्षता की।

सन् १९१६ में वह केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य चुने गए। सन् १९२० में जब वह केन्द्रीय विधान परिषद के सदस्य थे तब भारत सरकार के कानून विभाग के मंत्री नियुक्त हुए। अस्वस्थता के कारण उन्होंने दो वर्ष पश्चात् मंत्रिपद से पद त्याग कर दिया। वह मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार योजना के विवरण को तैयार करने के लिए नियुक्त लार्ड साउथबरो की कार्य एवं मतदान समिति के सदस्य थे। लार्ड सेलबोर्न की कमेटी से लंदन में मिलने वाले महत्वपूर्ण प्रतिनिधि मंडल के भी सदस्य थे। कांग्रेस के उग्रवादियों से मतभेद होने के कारण वह सन १९१९ में उससे पृथक हो गए तथा इसी वर्ष नरमदल में सम्मिलित हो गए। वह नरम संघ (लिबरल फेडरेशन) के सन् १९२३ और १९२५ में अध्यक्ष थे। बाद में नरम दलीय नेताओं से कुछ महत्वपूर्ण मामलों में मतभेद हो जाने के कारण इससे भी पृथक हो गए। सन् १९२३ में वह लंदन की इम्पीरियल कांफ्रेंस के सरकारी प्रतिनिधि नियुक्त हुए। इस कांफ्रेंस में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों में भारतीयों की स्थिति पर विचार होते समय उन्होंने बड़ी प्रमुखता से कार्य किया। वह मुडीमेन जांच समिति के भी सदस्य थे। इस समिति का अल्पमतीय विवरण तैयार करने में आपने बड़ा सहयोग दिया। वह प्रिवी कौंसिल के सदस्य भी नियुक्त किए गए।

सर तेज ने कानूनी पेशे को चमकाया। उनका देश के वकीलों में सदैव बड़ा सम्मान था। उन्होंने उच्च स्तर के व्यवहार का परिचय दिया। उनकी ईमानदारी सर्व विदित थी। उनकी बड़ी आय थी, पर वह लोभी नहीं थे। वह अनेक लोगों का काम बिना रुपये लिए कर देते थे। उनकी

प्रशंसा में सर मौरिस ग्वायर ने कहा था, "उनके लंबे और सम्माननीय कार्यकाल में उन्होंने उपयुक्त न्याय प्रशासन में यथाशक्य उच्चतम स्तर के व्यवहार पर सदैव ज़ोर दिया। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि सच्चे, स्वतंत्र और सशक्त वकीलों की सहायता के बिना स्वतंत्र से स्वतंत्र न्यायाधीश भी अशक्त हो जायंगे। इन सिद्धांतों पर वह दृढ़तापूर्वक जमे रहे तथा उनको मन, वचन और कर्म से पालन कर आदर्श उपस्थित किया है। ऐसे लोग अपने पेशे के लिए गौरवशील तथा प्रतिष्ठाजनक हैं।"

सन् १९१० में सर तेज की पत्नी का देहांत हो गया। उस समय सर तेज की अवस्था ३५ वर्ष की थी। उनका दाम्पत्य जीवन बड़ा सुखी था। पत्नी विछोह से वे बहुत दिनों तक दुखी रहे। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। उनका जीवन निष्कलंक रहा। कई दृष्टियों से उनका पारिवारिक जीवन आदर्श था। जब उनका देहांत हुआ उस समय उनके तीन पुत्र, दो पुत्रियां, चौबीस पौत्र-पौत्रियां तथा सात प्रपौत्र-प्रपौत्रियां थीं। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री प्रकाश नारायण सप्रू इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे। दूसरे पुत्र श्री त्रियुगी नारायण सप्रू इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कानून के अध्यापक हैं। श्री आनंद नारायण सप्रू आई० सी० एस० (इंडियन सिविल सर्विस) के सदस्य हैं तथा उत्तर प्रदेश सरकार के अंतर्गत एक उच्च पदस्थ अधिकारी हैं।

स्वर्गीय सर सी० वाई० चिंतामणि और सर तेज घनिष्ठ मित्र थे। सर तेज नित्य के समाचारों को जानने तथा सम्पादक चिंतामणि से लम्बे वार्त्तालाप के लिए अधिकतर लीडर कार्यालय जाते थे। वह मद्रासी पकवानों के बड़े प्रेमी थे तथा अधिकतर चिंतामणि का आतिथ्य ग्रहण करते थे। वह कभी-कभी भोजन के समय पहुंचते थे तथा "चारु" चखना चाहते थे। वह मिठाइयों और पकौड़ियों के भी बड़े शौकीन थे। उनकी पाचक क्रिया अच्छी थी तथा अच्छे भोजन की रुचि कभी कम नहीं हुई।

सर तेज एक तरह से निरंतर धूम्रपान करते थे। वह सायंकाल दरबार लगाया करते थे जिसमें विभिन्न सम्प्रदायों और विचारों के लोग उपस्थित रहते तथा उनका आतिथ्य ग्रहण करते थे। सफेद कुरता और पायजामा पहने वह गादी पर पालथी लगाकर बैठते थे। कभी हुक्का, कभी चुरुट और कभी सिगरेट पिया करते थे। बीच-बीच में पान का दौर चलता रहता था। कहा जाता है कि एक बार वह बहस कर चुकने के बाद धूम्रपान करने के लिए अदालत के बाहर गए, पर सर तेज के प्रतिपक्षी ने कोई ऐसा प्रश्न उठा दिया जिसका उत्तर सर ग्रिमवुड मायर्स उनसे चाहते थे। तुरंत सर तेज को बुलवाया गया। प्रधान न्यायाधीश ने कहा, "सर तेज बहादुर सप्रू आप कुछ देर और बाहर रहते तो अच्छा रहता नहीं तो कहीं तुम्हारी बहस धुंए में ही खत्म न हो जाय।" ज्योंही मुख्य न्यायाधीश ने ये शब्द कहे त्योंही सर तेज मारे हँसी के लोट पोट हो गए।

कहा जाता है कि जब सर तेज लंदन में थे तब एक दिन बहुत रात बीते एक पत्रकार ने उन्हें टेलीफोन किया और कहा, "हमारे भारतीय कार्यालय से समुद्री तार द्वारा हमें ज्ञात हुआ है कि आपको शाही ख़िताब मिलने वाला है ?" सर तेज ने कहा, "हां, तो क्या बात है ?" पत्रकार ने कहा, "महाशय, क्या मैं जान सकता हूं कि आपने अपने लिए कौनसा नाम चुना है।" सर तेज ने उत्तर दिया, "ड्यूक आफ ब्लेज़ेज" (जहन्नुम के राजकुमार) और इतना कहकर टेलीफोन रख दिया।

सर तेज म्यूनिसिपल बोर्ड कार्पोरेशनों आदि से अभिनंदन पत्र स्वीकार नहीं करते थे। उन्हें जुलूस, मालायें तथा सार्वजनिक थैली समर्पण भी अरुचिकर थी।

सर तेज न केवल वकील वरन् उच्च कोटि के विद्वान भी थे। उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था तथा इंग्लेंड और भारत के प्रकाशक उन्हें नियमित रूप से नयी पुस्तकें भेजा करते थे। उनका फारसी

और उर्दू का भी गहरा अध्ययन था। वह फारस की भाषा और साहित्य को भली भांति जानते थे। सन् १६४३ में ईरान का सांस्कृतिक प्रतिनिधि दल भारत आया था। उनकी मातृभाषा में सर तेज की असाधारण विद्वत्ता से वह बड़ा प्रभावित हुआ। सर तेज उर्दू के बड़े प्रेमी थे तथा अनेक वर्षों तक अन्जुमने तरक्कीए उर्दू के अध्यक्ष रहे। उन्होंने इलाहाबाद में एक समिति संघटित की जिसका नाम 'रूहे अदब' था। इस समिति का उद्देश्य उर्दू साहित्य के सांस्कृतिक पक्ष को विकसित करना था। अधिकतर उनकी यह आलोचना की गई है कि वह हिन्दी के प्रति उदासीन थे, पर लोग यह भूल जाते हैं कि सर तेज के आरम्भिक जीवन काल में कश्मीरी ब्राह्मण हिन्दी से अनभिज्ञ थे तथा उन्हें हिन्दी की शिक्षा नहीं मिली।

सर तेज खेल कूद के शौकीन नहीं थे। वह कोई खेल नहीं खेलते थे। व्यायाम तो कदाचित ही करते हों। ऐसा लगता था कि शारीरिक यंत्र इतना अच्छा था कि उन्हें व्यायाम की आवश्यकता ही नहीं थी। सर तेज आजीवन बहुत कुछ चंगे रहे।

सन् १६४२ में सर तेज का ब्रिटिश सरकार पर से विश्वास उठ गया। विदेशी नौकरशाही ने उन दिनों जैसा अमानुषिक दमन चक्र चलाया उससे उन्हें बड़ी वेदना हुई। सन् १६४३ में कांग्रेस के उद्देश्य का समर्थन करने के लिए उन्होंने जो कार्य किया उसकी कांग्रेसी नेताओं ने प्रशंसा की तथा उनके प्रति बड़ा आदर प्रकट किया।

सर तेज कभी नारे बाज़ नहीं थे। राजनीति के प्रति उनका दृष्टिकोण तर्क तथा स्वस्थ बुद्धिमत्ता पर आश्रित था। एक दिन जब मैंने उनसे भेंट की तब वह चंगेज खां के बारे में एक पुस्तक पढ़ रहे थे क्योंकि कुछ मुस्लिम लीगी कांग्रेस को उस निर्मम विजेता की याद दिलाकर धमका रहे थे। दूसरी बार मैंने उन्हें रोमन साम्राज्य के पतन की कहानी पढ़ते पाया। वह साम्राज्यों के पतनों में समानता ढूढ़ रहे

थे। भारत में भी ब्रिटिश साम्राज्य पतन के गर्त की ओर बढ़ता जा रहा था। सर तेज के पुस्तकालय की गणना देश के बड़े पुस्तकालयों में थी। उसमें न केवल कानून की वरन् अन्य विषयों की भी पुस्तकें थीं। सर तेज की मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व उनमें और पंडित नेहरू में बड़ी मैत्री और परस्पर समझबूझ विकसित हो गई। जब भी पंडित नेहरू इलाहाबाद आते थे तब सर तेज से मिलने अवश्य जाते थे।

सर तेज ने न्यायालय की प्रतिष्ठा भंग के आरोपों में समाचार पत्रों की ओर से कई बार पैरवी की। वह समाचार पत्रों की स्वतंत्रता के हामी थे तथा चाहते थे कि उन्हें यथेष्ट आलोचना करने की स्वतंत्रता रहे। वह आखिरी बार अदालत में आज़ाद हिन्द फौज के मामलों में स्वर्गीय भूलाभाई देसाई, पंडित जवाहरलाल नेहरू और डाक्टर कैलाश नाथ काटजू के साथ खड़े हुए थे।

वह बड़े मनोरंजक संभाषणकर्त्ता थे। उनका सदैव बड़ा सौजन्य-पूर्ण व्यवहार था। राजनीति में निष्ठ तर्क संगति और कानून में पांडित्य के कारण वह सर्वत्र विख्यात हो गए थे। वह बड़े विनोदप्रिय थे। अपनी अंतिम रुग्णावस्था में एक दिन उनके पैरों के तलुओं में बड़ी जलन पड़ रही थी। उन्होंने नर्स (परिचारिका) को बुलाया और कहा, "देखो मेरे पैरों में बड़ी जलन पड़ रही है। मैं मृत्यु के पूर्व ही जला जा रहा हूं।"

सर तेज का देहांत २० जनवरी १९४९ को हुआ और इसके साथ ही भारतीय राजनीति का एक अध्याय समाप्त हो गया। वह ब्रिटिश नरम परम्पराओं की श्रेष्ठ उपज थे जिन्होंने असहयोग के पूर्व काल के राजनेताओं को प्रभावित किया। वह सज्जन और देशभक्त थे। अपने इरादों की पवित्रता के कारण उनसे मतभेद रखने वाले भी उन्हें चाहते थे। गांधीजी अपने भिन्न दृष्टिकोण के बावजूद उन्हें चाहते थे क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि सर तेज बड़े सत्य प्रेमी तथा बड़े देश प्रेमी थे।



जमनालाल बजाज

देश के लिए जीने तथा प्राण न्योछावर करने वाले प्रसिद्ध देश भक्तों की कोटि में सेठ जमनालाल बजाज अपने ढंग से चमकते हैं। बजाज के जीवन की कहानी एक वणिक् युवराज की कहानी है जो देशभक्त हो गया तथा जिसने देश की सेवा तन, मन और धन से की। ११ फरवरी १९४२ को उनकी मृत्यु से भारत ने एक महान देशभक्त, गांधीजी ने एक सच्चा अनुचर, कांग्रेस ने एक जगमगाता रत्न और व्यावसायिक समाज ने एक आदर्श व्यक्ति खो दिया।

जमनालालजी का जन्म ४ नवम्बर सन् १८८९ में हुआ था। बचपन से ही उनमें नेतृत्व के लक्षण दिखाई पड़ते थे। सम्पत्ति ने उनके जीवन पर कोई विकृत प्रभाव नहीं डाला था। उन्होंने उसका जन सेवा में उपयोग किया। वह सन् १९२० में कांग्रेस में सम्मिलित हुए तथा अनेक राजनीतिक तूफानों को सहन किया। वह २२ वर्षों तक कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रहे तथा आठ बार जेल गए। वह बड़ी संघटन शक्ति के व्यवसायी थे। उन्होंने अनेक संस्थायें संस्थापित कीं तथा ज़रूरतमंदों को सहायता करने में कभी नहीं हिचके।

जमनालालजी सेठ बच्छराज के गोद लिए पुत्र थे। एक बार सेठ बच्छराज ने गुस्से में उनसे कहा, "तुम्हें मुझसे नहीं बल्कि मेरी सम्पत्ति से प्रेम है। तुम अपने पिता के पास वापस जा सकते हो।" इससे युवक आत्माभिमानी जमनालाल के हृदय को ठेस पहुंची और वह बच्छराज के यहां से चले गए। वह बच्छराज की सम्पत्ति पर अपने हिस्से का दावा कर सकते थे, पर उन्होंने अपने हिस्से को छोड़ने का दस्तावेज भेज दिया। उन्होंने बच्छराज को एक पत्र भी लिखा। उस पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिख



जमनालाल बजाज

दिया कि, "आज से मैं आपसे एक छदाम भी नहीं लूंगा। मेरे मन में आपके प्रति कोई दुर्भाव नहीं है। मैं आपकी सम्पत्ति पर कोई दावा नहीं करता। आप दीर्घायु हों, मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करूंगा। आपसे प्रार्थना है कि मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर दें। मेरी सम्पत्ति के लिए कोई आकांक्षा नहीं है। आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं आपकी सम्पत्ति पर कोई दावा नहीं करूंगा।"

जब उन्होंने यह पत्र लिखा था, तब उनकी अवस्था केवल सत्रह वर्ष की थी। इससे बच्छराज बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अपने व्यवहार पर दुख प्रकट किया और जमनालालजी को वापस बुला लिया।

जमनालालजी सम्पत्ति से दूर भागते थे पर सम्पत्ति उनका पल्ला पकड़ती थी। उनके पास भारी सम्पत्ति थी और उन्होंने इसका उपयोग दूसरों के सहायतार्थ तथा योग्य कार्यों में किया। परंतु जहां तक उनका व्यक्तिगत संबंध था वह बड़े "कंजूस" थे। वह सरल जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने अपने लिए कोई महल नहीं बनवाए। तन पर मोटी खादी के कपड़े पहिनते थे। जब गांधीजी संपत्ति-संरक्षण के सिद्धान्त की बात करते थे तब उनके मन में सेठ जमनालाल जैसे लोगों का ही ध्यान रहता था। गांधीजीने जमनालालजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था, "जब भी मैंने धनिकों के बारे में जन साधारण के हित में अपनी सम्पत्ति के संरक्षक बन जाने के लिए लिखा तब मेरे मन में मुख्यतः इसी वणिक-युवराज का ध्यान रहता था। यदि उनका सम्पत्ति-संरक्षण पूर्ण आदर्श नहीं था तो भी इसमें उनका कोई दोष नहीं था। मैं जान बूझकर उन पर अंकुश रखता था। मैं उन्हें उत्साह के क्षणों में ऐसा कोई कदम नहीं उठाने देना चाहता था जिसपर वह शांतिपूर्ण क्षणों पर पछताते। उनमें निराली सरलता थी। उन्होंने अपने लिए जो भी घर बनवाया वह "धर्मशाला" बन गयी। राजनीतिक बारीकियों में वह अपना पुष्ट मत प्रस्तुत करते थे। उनका निर्णय परिपक्व होता था। संपत्ति त्याग

करने का अंतिम निर्णय तो सर्व श्रेष्ठ था। वह रचनात्मक कार्य में अपने शेष जीवन तथा अपनी समस्त शक्ति को लगाना चाहते थे। यह कार्य गौरक्षण के रूप में देश के पशु धन के संरक्षण का था। मैंने उन्हें इस कार्य में असीम मनोयोग तथा उत्साह से जुटे देखा। वह जाति, धर्म और रंग भेद का ख्याल किये बिना उदार थे। वह ऐसे कार्य करते थे जो व्यस्त पुरुष के लिये साधारणत: करना कठिन था। वह बड़े संयमी थे। उनके देहावसान से संसार में एक अभाव हो गया। देश ने अपना एक बड़ा साहसी सपूत खो दिया।"

जमनालालजी कार्य कुशलता के मूर्तिमान प्रतीक थे। उनका जिन संस्थाओं से संबंध था उनके बारे में यह पूर्ण विश्वास था कि एक छदाम भी व्यर्थ खर्च नहीं होगा। आचार्य कृपालानी ने उनकी प्रशंसा में कहा था, "संस्थाओं तथा ट्रस्टों से सेठजी के सम्पर्क से इस बात का पूरा विश्वास रहता था कि उनका कोष व्यर्थ खर्च नहीं होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के हिसाब-किताब के सही और सिलसिलेवार लेखे जोखे का श्रेय उन्हीं को था।"

जमनालालजी की खादी, हरिजन उद्धार, राष्ट्रभाषा प्रचार और गो सेवा जैसे रचनात्मक कार्य में सच्ची रुचि थी। वह बड़े संवेदनाशील थे। उनके जीवन का यह विरद-वाक्य था—"कभी निराश न होओ।" बिहार जमनालालजी का बड़ा कृतज्ञ है। जब सन् १९३४ में वहां भूकम्प से धन जन की अपार हानि हुई तो जमनालालजी वहां गये। अनेक दिन वहां ठहरे तथा पीड़ितों की सहायता की।

कभी जमनालालजी रायबहादुर तथा अवैतनिक न्यायाधीश (आनरेरी मजिस्ट्रेट) भी थे। जब वह सन् १९२१ में गांधीजीके नेतृत्व में कांग्रेस आन्दोलन में संम्मिलित हुए तो उस खिताब को त्याग दिया।

उन पर गांधीजी का बड़ा प्रभाव पड़ा। एक दिन युवक जमनालाल ने गांधीजी से कहा—"मैं आपसे एक दान चाहता हूं।" गांधीजी को उनके

कथन पर आश्चर्य हुआ पर उन्होंने कहा, "अच्छा कहो, क्या चाहते हो, यदि मुझमें क्षमता होगी तो मैं उसे तुम्हें दूंगा।" जमनालालजी ने तुरत कहा, "मेरी इच्छा है कि आप मुझे देवदास का भाई मानें तथा अपना पांचवां पुत्र समझें।" गांधीजी को इस पर सुखद आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा, "तथास्तु।" जमनालालजी के लिये यह गौरव की बात थी पर इसके साथ ही उनका दायित्व बढ़ गया था। उन्होंने इस दायित्व का अच्छी तरह निर्वाह किया और बापू के सदैव भक्त रहे। उन्होंने बापू का अनुसरण किया और उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार कार्य किया। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने जमनालालजी बजाज के निधन पर 'सोशल वेलफेयर' में लिखा—"जमनालालजी प्रतिभाशाली व्यवसायी थे। यदि वह गांधीजी के प्रभाव में न आये होते तो सामान्य अर्थ में भारत के प्रमुख व्यवसायी बन गये होते। इसमें संदेह नहीं कि वह वास्तव में प्रमुख व्यवसायी थे क्योंकि गांधीजी के साम्राज्य में उनके जिम्मे रचनात्मक कार्य का प्रबन्ध था। उनकी संघटन शक्ति का उपयोग चर्खा संघ, हिन्दी प्रचार तथा अन्य देश व्यापी प्रवृत्तियों में किया गया। उनका मध्यप्रदेश के सार्वजनिक जीवन पर अदृश्य प्रभाव था। उन्होंने जयपुर प्रजामंडल का नेतृत्व किया। कांग्रेस के उच्चस्थ नेतृत्व मंडल में वह स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय देते थे जिस पर पक्के राजनीतिज्ञों को आश्चर्य होता था। यद्यपि उनका शरीर स्वस्थ, सुदृढ़ था पर बार बार की जेल यात्रा ने उसे जर्जर कर दिया था। भारत में ब्रिटिश नौकरशाही के निंदनीय कृत्यों का इससे बड़ा क्या उदाहरण हो सकता है कि उसने सन् १९३२ में इस धनपति को, भारत के इस प्रमुख नेता तथा आधुनिक भारत के एक महान सज्जन पुरुष को जेल में 'बी' (दूसरी) श्रेणी के योग्य भी नहीं समझा। बम्बई सरकार ने उन्हें धूलिया जेल में दो वर्ष तक 'सी' (तीसरी) श्रेणी में रखा।" बजाज ने कोई कार्य अनमने ढंग से नहीं किया। अपने जीवन के अंतिम काल में उनका स्वास्थ्य अच्छा

नहीं, था, पर इससे कार्य करने के उत्साह में कोई कमी नहीं आयी थी। चिकित्सकों तथा हितचिंतकों ने उन्हें विश्राम करने की सलाह दी थी, पर वह तो विश्राम करना जानते ही नहीं थे। उन्होंने गो सेवा का कार्य अपने हाथ में लिया। उनकी महत्वाकांक्षा देश के पशुधन रक्षण तथा संवर्धन की थी। अपने देहान्त के कुछ दिन पूर्व उन्होंने गो सेवा सम्मेलन आमंत्रित किया था जिसमें भारतीय पशु समस्या में रुचि लेनेवाले अनेक लोग सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन की अध्यक्षता विनोबा भावे ने की थी। उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया था। श्री विनोबा भावे और गांधीजी ने अपने भाषणों में जमनालाल जी की अस्वस्थता का उल्लेख किया था, पर उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों को गो सेवा में लगाने का निश्चय कर लिया था। गोपुरी (गौशाला) में उन्होंने अपने लिये एक झोंपड़ी बना ली थी तथा उसमें संन्यासी की तरह रहने लगे थे। पर विधाता को और ही कुछ मंजूर था। उनका अकस्मात् देहांत हो गया।

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने जमनालालजी के देहावसान के समय की कुछ मार्मिक घटनाओं का उल्लेख किया है। जमनालालजी की मृत्यु के कुछ मिनट पहले गांधीजी को उनकी बीमारी की खबर दी गई। गांधीजी तुरंत वर्धा के लिये चल पड़े पर वे उनकी मृत्यु के कुछ मिनट ही बाद वहां पहुंच सके। उन्होंन आते ही जमनालालजी के माथे पर हाथ रख दिया और बैठ कर उनकी ओर देखते रहे। श्रीमती जानकीदेवी शोक सागर में डूबी हुई थीं। वह गांधीजी से बार बार कह रही थीं कि मेरे पति को जीवित कर दो। बापू ने जानकीदेवी को सांत्वना देते हुए कहा, "जानकी, अब तुम्हें रोना नहीं चाहिये, तुम्हें धीरज रखना चाहिये तथा बच्चों को धीरज बंधाना चाहिये। जमनालालजी जीवित हैं। उनके लिये मृत्यु कहां है जिनकी कीर्ति अमर है। उनकी मृत्यु तो तब ही होगी जब तुम उनके पदचिह्नों पर नहीं चलोगी।"

इससे जानकीदेवी को सांत्वना नहीं मिली। वह गांधीजी से प्रार्थना

करती ही रहीं कि जमनालालजी को जीवित कर दीजिये। उन्होंने पूछा, "क्या सचमुच में उनका देहांत हो गया? क्या आप उन्हें जीवित नहीं कर सकते?"

बापू ने कहा, "मैं तुम्हें झूठी सांत्वना नहीं देना चाहता। जमनालाल की शारीरिक मृत्यु हो गई पर असली जमनालाल तो जीवित हैं। उनको भविष्य में जीवित रखने का दायित्व तो तुम पर है।"

उनका शोक किसा गोतामी की स्मृति दिलाता है। वह कहती ही रहीं "मेरे पति को जीवित कर दो पर जब उन्हें अनुभव हुआ कि यह संभव नहीं है तो उन्होंने कहा," "बापू, अब मुझे सती हो जाने दो। क्या मैं इन दिनों सती नहीं हो सकती? मैं आप को विश्वास दिलाती हूं कि मुझे अग्नि में कोई कष्ट नहीं होगा। मैं आराम से जल जाऊंगी। मुझे सती हो जाने दीजिये।"

बापू ने उनसे कहा, "अपने को जला कर भस्म करने में वीरता नहीं है। हजारों स्त्रियां अपने पतियों के साथ जल चुकी हैं। इसमें एक प्रकार की वीरता अवश्य है, पर यह वास्तविक वीरता नहीं है। सच्ची सती होना असाधारण बात है। सती को अपना शरीर भस्म करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें कुछ भी नहीं है। सभी दोषों को भस्म करना ही सती का असली कार्य है। तुम्हें त्याग की मूर्ति बन जाना चाहिये। यही असली सती होना है।"

जमनालालजी की साध्वी पत्नी बापू के शब्दों के अनुसार सच्ची सती हो गईं। उन्होंने अपने जीवन को देश सेवा कार्य में लगा दिया तथा अपने पति संचालित कार्यों को पूरा करने लगीं।

जमनालालजी का त्यागपूर्ण जीवन था। ऐसे लोग मृत नहीं हैं। उनके कार्य उन्हें जीवित रखते हैं तथा दूसरों को प्रेरणा प्रदान करते हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू के शब्दों में, "जमनालालजी ने अपने सीधे ढंग से लगनपूर्वक भारत की सेवा की। जब राष्ट्रीय संघर्ष का इतिहास लिखा जायगा तब उन देशभक्तों की कोटि में जो देश की स्वतंत्रता के लिये कोई भी त्याग करने में नहीं झिझके, उन्हें सम्मानपूर्ण स्थान अवश्य मिलेगा।

